Nov
2023

मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

फ़िलिस्तीन की तबाही, अरबों की तबाही का पहला क़दम है

“फ़िलिस्तीनियों की तबाही सिर्फ़ उन्हीं की तबाही नहीं बल्कि अल्लाह महफ़ूज़ रखे, यह अरबों की तबाही का पहला क़दम है जो इस्राईल ने हालात का ख़ूब जाएज़ा लेकर उठाया है और जिसमें वह बज़ाहिर अब तक कामयाब है। इस्राईल जो कि इस्लामी मिल्लत के दसियों मुल्कों से भी छोटा है और उसका इतिहास बुज़दिली का, ज़िल्लत और बर्बादी का रहा है। आज मिल्लत–ए–इस्लामिया के बड़े मुल्क भी उसके सामने हाथ बांध कर खड़े हो रहे हैं। न बड़े आपसी मुनाफ़े की फ़िक्र न ग़ैरत वग़ैरह का ख़्याल!”

(आलम–ए–इस्लाम और साम्राजी निज़ाम: ११४)

मुर्शिदुल उम्मत हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी (रह०)

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल नदवी
दारे अरफ़ात, तकिया कलां, रायबरेली

मसला–ए–फ़िलिस्तीन

अमरीकी दस्तावेज़ों की रोशनी में

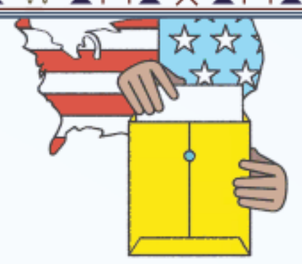

१९१९ई० में अमरीकी राष्ट्रपति वूड्रो विल्सन को अमरीकी विशेषज्ञों की ओर से एक कमीशन की पेश की गई रिपोर्ट का खुलासा:

"कमीशन सिफ़ारिश करता है कि ब्रिट्रेन के मैन्डेट में फ़िलिस्तीन में यहूदियों का क़ौमी वतन क़ायम कर दिया जाए और दुनिया भर के यहूदियों से अपील की जाए कि वह फ़िलिस्तीन में आकर बसें और उन्हें हर तरह का सहयोग दिया जाए और साथ ही इस बात का भी ध्यान रखा जाए कि ग़ैर यहूदियों नागरिकों के अधिकार प्रभावित न हों।"

१९४४ई० में अमरीकी राष्ट्रपति फ्रेंक्लिन डी. रूज़वेल्ट का एक अहम बयान:

"आज मुझे बड़ी ख़ुशी महसूस हो रही है, इसलिए कि यहूदी शरणार्थियों के लिए आज फ़िलिस्तीन के दरवाज़े खोल दिये गए हैं। भविष्य में जब अहम फ़ैसले लिए जाएंगे तो उन लोगों को इन्साफ़ मिल जाएगा जो यहूदियों के क़ौमी वतन के लिए कोशिश कर रहे हैं। हमारी हुकूमत और अमरीकी क़ौम दोनों इसको महसूस करते हैं और आज तो कुछ ज़्यादा ही इसका एहसास है।"

१९५७ई० में यहूदी–ईसाई कान्फ्रेंस में अमरीकी राष्ट्रपति जॉन एफ़. केनेडी का बयान:

"मुझे यक़ीन है कि अबर और यहूदी दोनों नागरिक दोस्ती पर एकमत हो जाएंगे और इस रास्ते में दाख़िली सतह पर दोनों को जिस आलोचना व निंदा का सामना करना पड़ेगा उसको बर्दाश्त करेंगे और जंग के रास्ते को छोड़कर तमाम कोशिशों और आर्थिक संसाधनों को तामीरी (निर्माणी) रुख़ पर लगाएंगे। इस्राईल एक तेज़ रोशनी है जो मिडिल ईस्ट में फूट रही है।"

१९९४ई० में अमरीकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन का इस्राईली संसद में बयान:

"तुम्हारा पतन हमारा पतन है। अमरीका अब भी तुम्हारे साथ है और आगे भी रहेगा।"

मलिक अब्दुल अज़ीज़ के एक ख़त के जवाब में अमरीकी राष्ट्रपति हैरी एस. ट्रमन का जवाब:

"अमरीका अपने रवैये पर अटल है, वह यह कि जनता को उनकी हुकूमत दी जाएगी और फ़िलिस्तीन में यहूदी बस्तियां बसाना भी ज़रूरी है।"

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

अंक:11 | नवम्बर 2023 ई० | वर्ष:15

सम्पादक

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

सम्पादकीय मण्डल

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

अब्दुस्सुबहान नाखुदा नदवी

सह सम्पादक

मो० नफ़ीस ख़ॉ नदवी

मुद्रक

मो० हसन नदवी

अनुवादक

मोहम्मद सैफ़

अल्लाह की नुसरत की बशारत

अल्लाह के रसूल
(सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम)
ने फ़रमाया:

"मेरी उम्मत के एक गिरोह को अल्लाह की मदद हमेशा हासिल रहेगी, उसकी मदद न करने वाले उसे क़यामत के दिन तक कोई नुक़सान नहीं पहुंचा सकते।"

(सुनन तिरमिज़ी: 2351)

E-Mail: markazulimam@gmail.com www.abulhasanalinadwi.org

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल-नदवी दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली,यू०पी०.229001

प्रति अंक 15रू

मो० हसन नदवी ने एस० ए० आफसेट प्रिन्टर्स, मस्जिद के पीछे, फाटक अब्दुल्ला खॉ, सब्ज़ी मण्डी, स्टेशन रोड रायबरेली से छपवाकर आफिस अरफ़ात किरण,मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल-नदवी, दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली से प्रकाशित किया।

वार्षिक 100रू०

Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi Samiti (Punjab National Bank) A/c No. 6127002100000339 (IFSC: PUNB0612700)

होशियार ऐ मिल्लते बैज़ाए मा

हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद सानी हसनी (रह0)

हर नफ़्स होती है कांटों की चुभन
यह है गुलशन या है सेहरा या कि बन?

क्या करे शिकवा कोई सैय्याद का
बाग़बां ही जब करें वीरां चमन

कारवां भटका है दश्ते ख़ार में
हर क़दम मिलते हैं उसको राहेज़न

लूट ली एक-एक मताए कारवां
पर न आई उनके माथों पर शिकन

आह मिल्लात ख़ाना वीरां हुई
एक रही आबाद उनकी अन्जुमन

कोई किरदार व ज़मीर उनका नहीं
उनकी दुनिया सूद व सौदा मक्र व फ़न

क़ौम बर्बादी पे अपनी चश्म-ए-तर
हैं मगर वह अपने ओहदों पर मगन

रहबरों के भेस में मिल्लत फ़रोश
मिल्लते मरहूम के हैं गोरकन

आदमियत नाम को उनमें नहीं
बस चले तो बेच खाएं वह कफ़न

बेज़मीरो बेवफ़ा व बेहया
नंग आदम, नंग दीं, नंग वतन

होशियार ऐ मिल्लते बैज़ा-ए-मा
करवटें लेकर उठा फिर अहरमन

आदमी को आदमी खाता है अब
कितना बिगड़ा है ज़माने का चलन

"अलअमां अज़ जअफ़राने ई ज़मा"
"अलहज़र" सद बार अज़ीं दौरे फ़ितन

इस अंक में:

जलता है मगर शाम व फ़िलिस्तीन पे मेरा दिल 3

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

फ़िलिस्तीन त्रासदी और अरब नेतृत्व से साफ़-साफ़ बातें.....4

हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी (रह0)

फ़िलिस्तीनी झगड़ा और इस्राईली अतिक्रमण 6

हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी

इस्राईली रियासत और अन्तर्राष्ट्रीय ताक़तों का समर्थन.....8

हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद वाज़ेह रशीद हसनी नदवी (रह0)

ग़ज़्ज़ा-इस्राईल जंग – मुजरिम कौन?.....10

मौलाना जाफ़र मसऊद हसनी नदवी

मसला-ए-फ़िलिस्तीन और मुसलमानों की ज़िम्मेदारी.....11

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

फ़िलिस्तीन के मुद्दे पर एक नज़र.....14

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

यहूदी क़ौम और फ़िलिस्तीनी ज़मीन पर उनका हक़ 16

अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी

मसला-ए-फ़िलिस्तीन.....18

मुहम्मद अरमुग़ान बदायूंनी नदवी

इस्राईल नामंज़ूर क्यों?.....19

मुहम्मद नफ़ीस ख़ाँ नदवी

सम्पादकीय

जलता है मगर शाम व फ़िलिस्तीन पे मेरा दिल

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

दुनिया के मंज़रनामे पर फ़िलिस्तीन का मुद्दा उभर कर सामने आया है। यह कोई नया मसला नहीं है। अरबों की सरज़मीन पर 1917ई0 में ख़ुफ़िया तौर पर यहूदियों ने क़दम जमाने शुरू किये थो। 1920ई0 के बाद बाक़ायदा अंग्रेज़ों की सरपरस्ती में वहां यहूदियों की कई आबादियों का सिलसिला शुरू हुआ। 1939ई0 में उनकी संख्यां 6 लाख के क़रीब पहुंच गई। 1948ई0 में "इस्राईल" की स्थापना की घोषणा कर दी गई और यहूदियों ने कई अरब रियासतों पर क़ब्ज़ा करके अपनी हुकूमत क़ायम कर ली। इस तरह फ़िलिस्तीन की सरज़मीन पर एक ऐसा नासूर वजूद में आ गया जिसने न जाने कितने घरों को वीरान किया और वही यहूदी जो मज़लूमियत (प्रताड़ना) का रोना रो–रो कर वहां आबाद हुए थे, उन्होंने ज़ुल्म की वह सारी हदें पार कर दी, जिसके बारे में बात करना भी रोंगटे खड़े कर देने के लिए काफ़ी है। बड़ी जद्दोजहद के बाद फ़िलिस्तीन की एक छोटी सी पट्टी (ग़ज़्ज़ा) मुसलमानों के हवाले कर दी गई। लोकतान्त्रिक तरीक़े से वहां इस्लाम पसंद जमाअत को सत्ता मिली तो न्याय व क़ानून के ध्वजवाहकों को एक आंख न भाया। उसी अमरीका को यह लोकतन्त्र खटकता रहा जिसने इराक़, अफ़्ग़ानिस्तान और न जाने दुनिया के कितने देशों में "लोकतन्त्र" के नाम पर क्या कुछ नहीं किया। इस्राईली हुकूमत ख़ुद जिस तरह अन्तर्राष्ट्रीय क़ानूनों को पैरों तले रौंदती रही है उस पर किसी देश को विरोध प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं और कोई करे भी तो कैसे करे "सुपर पॉवर" की सरपरस्ती उसको हासिल है।

फ़िलिस्तीन के मज़लूम (पीड़ित) मुसलमानों ने अपना घर वापस लेने की कुछ कोशिश की तो दुनिया चीख़ पड़ी और फिर इस्राईल ने अपने सभी संसाधनों के साथ जिस तरह क़ानून की धज्जियां बिखेरी हैं वह इतिहास का एक काला अध्याय है। इस वक़्त न अस्पताल सुरक्षित हैं न स्कूल, कितने स्कूल इसलिए बन्द हो गए कि वहां सब बच्चे शहीद कर दिए गए। क्या यह मुमकिन था कि दुनिया में कहीं और यह वाक़्या होता और दुनिया ख़ामोश रहती लेकिन...

यह कोई नई बात नहीं है, ईसाई यूरोप का यही पुराना इतिहास है और नई दुनिया अमरीका ने इस चलन को और अधिक "उन्नति" के साथ अपनाया है और यूरोप उसका सहयोगी है। इस तरह अमरीका, इस्राईल और यूरोप का एक ऐसा त्रिकोण तैयार हुआ है जो पूरी दुनिया को अपनी लपेट में लेना चाहता है। उनके यहां मानवता तथा मानवीय मूल्यों की कोई क़ीमत नहीं। न उनको हीरोशिमा और नागासाकी पर बम बरसाने में कोई झिझक हुई, न इराक़ व अफ़्ग़ानिस्तान की ज़मीनों को लहुलुहान कर देने से उनके माथे पर कोई बल आया और न इस वक़्त ग़ज़्ज़ा की इन्सानी आबादी पूरी तरह तबाह व बर्बाद करने में उनको कोई शर्म है। पूरी दुनिया के लोग विरोध कर रहे हैं, ख़ुद इन्साफ़ पसंद बहुत से यहूदी इसके ख़िलाफ़ आवाज़ उठा रहे हैं। बहुत से देशों ने कड़ा विरोध दर्ज कराया है और बहुत से मानवतावादी देशों से देखा न गया तो उन्होंने अपने तौर पर जो बन पड़ा वह किया लेकिन "साहब" की दादागीरी के आगे किसकी दाद व फ़रियाद है।

अफ़सोस है अरब मुल्कों पर जो अपने मामूली फ़ायदे की ख़ातिर ज़ालिमों की ख़िदमतगुज़ारी में लगे हुए हैं और सबसे बढ़कर जो मुल्क उसके लिए आगे आता और इस्लामी दुनिया का नेतृत्व करता, उसने सारी हदें पार कर दीं। ग़ज़्ज़ा में आग लगाई जा रही है, मासूम बच्चों और औरतों को मारा जा रहा है, जिस्मों के टुकड़े बिखरे पड़े हैं, लाशों पर कफ़न नहीं हैं, ऐसे में वहां नाच–गानों की महफ़िलें सजाई जा रही हैं और इस्लाम के केन्द्र में इस्लामी शिक्षाओं व इस्लामी पहचानों की तौहीन की जा रही है। (फ़इल्लाहिल मुश्तका!)

इस वक़्त हम मुसलमानों की बड़ी ज़िम्मेदारी है कि कम से कम दुआओं से और अपने नेक कामों से हम जो मदद कर सकते हैं वह करें। दुआ को मोमिन का हथियार कहा गया है। यह एक बड़ा ज़रिया है। फिर इस्राईली चीज़ों से मुकम्मल परहेज़ और भी वह सब शक्लें जिनसे इस्राईली फ़ायदे पर चोट लगती हो अपनाई जाएं। क्या पता ज़ुल्म व सितम की यह आग ज़ालिम हो ही जलाकर ख़ाक कर दे। अल्लाह के यहां देर है अंधेर नहीं।

फ़िलिस्तीन जासदी और अरब नेतृत्व से साफ़-साफ़ बातें

हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी (रह०)

इस्राईल की रियासत अरब दुनिया के दिल और उसके बेहतरीन व मुक़द्दस मक़ामों (पवित्र स्थलों) के ठीक बीच में क़ायम हुई और अरबों और मुसलमानों के सीने पर एक बुरे ख़्वाब की तरह मुसल्लत हो गई। इसके बाद यहूदियों के अन्तर्राष्ट्रीय असर व रसूख की बदौलत उसने अपने वजूद को न सिर्फ़ बरक़रार रखा बल्कि दिन पर दिन ताक़तवर होती गई। इस्राईल के बहुत से लीडरों ने खुलकर यह बात कही कि इस्लाम के शुरूआती दौर में जिन यहूदी बस्तियों पर क़ब्ज़ा कर लिया गया था, वह उस पर दोबारा क़ब्ज़ा करना चाहते हैं। इससे आगे बढ़कर बहुत से यहूदी यह ख़्वाब देख रहे हैं कि एक न एक दिन उनको दुनिया की सबसे बड़ी ताक़त बनना है, जिसका हुक्म दुनिया के तमाम राष्ट्र व राष्ट्रपति, राष्ट्राध्यक्ष और मंत्रियों पर चलेगा और इस तरह वह ख़्वाब पूरा हो जाएगा जिसका ज़िक्र यहूदियों की पवित्र किताब तलमूद और ज़ियोनिज़्म नेतृत्व के मशहूर प्रोटोकॉल में मिलता है।

यहूदियों के बिल–मुक़ाबिल अरब बावजूद अपनी तमाम कमज़ोरियों और ख़ामियों के तमाम इन्सानों की दावत और हिदायत और पूरी दुनिया के और अन्तर्राष्ट्रीय पैग़ाम के हामिल और दाई (वाहक व प्रचारक) हैं और हमेशा रहेंगे। इसलिए ज़ियोनिज़्म (सहयूनियत) के बहुत से मक़सदों और मन्सूबों की पूर्ति ऐसी जीत नहीं जिसको एक पैग़ाम की दूसरे पैग़ाम पर, एक फ़लसफ़े की दूसरे फ़लसफ़े पर, एक उम्मत की दूसरी उम्मत पर, एक मज़हब की दूसरे मज़हब या हक़ (सत्य) की बातिल (असत्य) पर जीत कहा जा सके। यहूदियों के पास न पहले दिन दुनिया के लिए कोई दावत (आवाहन) मौजूद थी न आज है।

आज अरबों को चाहिए कि अपना सफ़र नये सिरे से शुरू करें और उस अख़लाक़ की जुर्रत और आला हिम्मती के साथ जो हमारी तारीख़ी रिवायात के बिल्कुल मुताबिक़ है, यह स्वीकार करें कि हमने अपनी ज़िन्दगी की नई तामीर और नई दुनिया में अपने सही मक़ाम व मर्तबे, क़ूव्वत व इत्तिहाद, इज़्ज़त व सरबुलन्दी को हासिल करने और फ़िलिस्तीन को बचाने के लिए जो रास्ता अब तक अख़्तियार किया, वह ऐसा टेढ़ा और लाहासिल रास्ता था जिससे सिवाए नाकामी व रुस्वाई और आरजुओं और तमन्नाओं के ख़ून के और कुछ नहीं मिल सकता था और जिस पर चलने वालों को अल्लाह तआला की वह नुसरत और मदद कभी नहीं मिल सकती जिस पर इज़्ज़त और सरबुलन्दी और ग़ल्बा और फ़तेहमन्दी (जीत) का दारोमदार है। हमको अब हिम्मत करके इसको मान लेना चाहिए कि अल्लाह तआला ने हमारी तक़दीर पर हमेशा के लिए इस्लाम के साथ और नबी–ए–उम्मी हज़रत मुहम्मद (स0अ0व0) और उनके दीन की ताईद (समर्थन) व हिमायत (सहयोग) के साथ जोड़ दी।

न सिर्फ़ अरबों के बाक़ी रहने व तरक़्क़ी करने, इज़्ज़त व सरबुलन्दी और जीत का दारोमदार मुहम्मद रसूलुल्लाह (स0अ0व0) की गुलामी और पैरवी में है बल्कि आप (स0अ0व0) की बेसत (आने) के लम्हे से क़यामत तक तमाम दुनिया के इन्सानों की फ़लाह व बहबूद, सआदत व निजात आप (स0अ0व0) ही के नक़्शे क़दम की इत्तेबाअ और दामन से जुड़े रहने में है।

हमको यह भी मान लेना चाहिए कि ज़ुल्म का अंजाम बहरहाल बुरा है और जिस रास्ते को आलमे अरबी की तानाशाह व पूंजीवादी (कैपिटलिस्ट) हुकूमतों ने अपने लिए पसंद किया है वह मुल्क व नस्ल दोनों के लिए बहुत भयानक है। वह न इस्लाम से मेल खाता है, न इन्सानियत से, न हक़ीक़ी आज़ादी से उसका ताल्लुक़ है, न लोकतन्त्र व समानत से!

इस वक़्त अरब क़ौम अपनी इतिहास के बहुत ही नाज़ुक और अहम दौर से गुज़र रही है। मैं यह नहीं कहता कि यह हार का दौर है या मुसीबत का मक़ाम है और मैं इस मुसीबत से ख़ौफ़ज़दा नहीं हूं। दावत और पैग़ाम की हामिल (वाहक) क़ौमें, लम्बा इतिहास रखने वाली क़ौमें, ज़िन्दा ज़मीर और रौशन ज़िन्दगी से भरपूर दिल रखने वाली क़ौमें इस तरह के दौर से गुज़रती ही रहती हैं। हम ख़ुद इस तरह के बेशुमार दौर से गुज़र चुके हैं। हमारे ऊपर सलीबियों (ईसाई) ने यलग़ार की, तातारियों

(मंगोल) का तूफ़ान हमारे सरों पर से गुज़र गया, जबकि ख़तरा पैदा हो गया था कि कहीं मुसलमानों की आख़िरी सांस भी न रुक जाए, फिर भी वह मायूसी और बदशगुनी का मक़ाम नहीं था क्योंकि मोमिन का ज़मीर ज़िन्दा था। मोमिन को अक़्ले शऊर थी और वह अच्छे और बुरे, दोस्त व दुश्मन और फ़ायदेमन्द व नुक़सानदेह का फ़र्क़ कर सकता था और उस वक़्त मुसलमान हिम्मतवाला, साफ़ बात कहने वाला और बहादुर था।

मैं इन जैसी त्रासदियों (अलमिया–ए–फ़िलिस्तीन) से ख़तरा महसूस नहीं करता बल्कि मुझे अस्ल ख़तरा उस ज़मीर से जिसने अपना काम करना छोड़ दिया है। ज़मीर का काम है हिसाब करना और ग़लतियों की पकड़ करना, चाहे वह अपने बाप और भाई से हुई हो या किसी इज़्ज़तदार पेशवा और रहनुमा से। अगर यह ज़मीर मुर्दा हो जाए, अपना फ़ितरी काम छोड़ दे, अपनी फ़ायदेमन्दी खो बैठे और उसमें हक़ीक़त के मानने की सलाहियत बाक़ी न रह जाए तो यही सबसे बड़ा ख़तरा है। यह इन्सानियत की मौत है। एक इन्सान मरता है तो हज़ारों इन्सान पैदा हो जाते हैं, लेकिन जब ज़मीर मुर्दा हो जाए, इज्तिमाई और क़ौमी ज़मीर से ज़िन्दगी के आसार ख़त्म हो जाएं, जब क़ौम से हिसाब करने की सलाहियत और जुर्रत ख़त्म हो जाए, जब तन्क़ीद (आलोचना) व एहतिसाब की जगह शाबासी और दाद व तहसीन (प्रशंसा) के फूल बरसने लगें, तो यह ऐसी त्रासदी होगी जिसके बाद किसी त्रासदी के बारे में सोचना भी मुमकिन नहीं।

अरब क़यादत सिर्फ़ फ़िलिस्तीन का मसला हल करने में नाकाम नहीं हुई है बल्कि अपनी क़ौम की सलामती की हिफ़ाज़त और मुल्क की इज़्ज़त व वक़ार और उनकी हदों की हिफ़ाज़त में भी नाकाम हुई है। उन्होंने अरब क़ौम के दामन पर ऐसा बदनुमा दाग़ लगा दिया है जिसे सात समन्दरों का पानी भी नहीं धो सकता। यह सिर्फ़ अरब ही नहीं तमाम मुसलमानों के दामन पर बदनुमा दाग़ है।

ख़ुदा के फ़ज़्ल से हमारे महबूब अरब मुल्कों के पास कुदरत के तमाम ज़राए (संसाधन) मौजूद हैं। ख़ुशहाल जिन्दगी जीने की सभी चीज़ें उन्हें हासिल हैं। उसके साथ ही हरब व दिफ़ा (रक्षा) और नश्र व इशाअत (प्रचार–प्रसार) के बेहतरीन ज़राए भी उन्हें हासिल हैं और उनकी इतनी बहुतायत है जो दूसरे मुल्कों में कम देखने में आती है। इसलिए कहा जा सकता है कि फ़तेह व ज़फर के तमाम भौतिक साधन मुहैया थे, फिर मौजूदा सूरतेहाल किस कमी का नतीजा कही जाए और इसका बुनियादी सबब किसे क़रार दिाय जाए? जवाब बहुत आसान और खुला हुआ है, वह यही कि इस्लाम के साथ इख़्लास की पूंजी न थी, उस हिम्मत की कमी थी जो सिर्फ़ ईमान और अक़ीदे से ही मिलती है, उस यक़ीन व भरोसे की कमी थी जो सिर्फ़ ख़ुदा की ज़ात से ताल्लुक़ रखता है।

ऐ अरब वालो! ऐ मक्का वालों और हरम के ख़िदमतगुज़ारो! आपने अपने हाथों से इस पाक घर को बनाया था कि हर घर से ऊंचा हो जाए और हर सनम (बुत) व हैकल (यहूदी इबादतख़ाना) से ऊंचा दिखाई दे। आपके लिए कैसे जाएज़ हो सकता है कि नाक़ाबिले ज़िक्र बुतों का सहारा लें। यहीं से पूरी दुनिया के लिए इन्सानियत की आवाज़ उठी, जिसने ऊंच–नीच की मान्यताओं को तोड़कर और नस्ली, वतनी गुलामी की जंजीरों को काटकर रख दिया। जिसने इतिहास का रुख़ मोड़ दिया। जिसने हादसों का मुंह मोड़ दिया। यहीं से वह रोशनी की किरन फूटी जो दुनिया में फैल गई और जिसने इन्सानियत के मुर्दा जिस्म में ज़िन्दगी की रूह दौड़ा दी।

ऐ अरब, मिस्र और शाम के सरदारो! उन मुसलमानों पर रहम करो जो जाहिलियत से मुंह मोड़कर इस्लाम और कुरआन को सबकुछ समझते हैं। आपने उन्हें मोमिन क़ौम बनाया था और पेड़–पौधों तथा पत्थरों की इबादत से बचाया था और एशिया व अफ़्रीक़ा की क़ौमें आज भी इन्तिज़ार में हैं। भूखी–प्यासी इन्सानियत अपनी ज़बान से "हमारे ऊपर पानी बहाव या उसमें से कुछ जो अल्लाह ने तुमको दिया है" की सदा लगा रही है कि मुहम्मद (स0अ0व0) के ख़्वाने करम से हमें भी कुछ दो। आप इस मामले में अजम वालों से तो पीछे न रहें आप से उस रसूल (स0अ0व0) का क़ौम का, वतन का, ज़बान का और तहज़ीब का बल्कि ख़ून का रिश्ता भी है। आप हम हिन्दुस्तानियों को देखें कि मुहम्मद (स0अ0व0) के नाम–ए–नामी पर हमारे जज़्बात बेअख़्तियार हो जाते हैं, रूह झूम उठती है और शौक़ की आग और तेज़ हो जाती है।

ऐ अरब वालो! इस्लामी दुनिया तुम्हारा एहतिराम करती है, उसकी क़द्र करो। इस्लामी ग़ैरत और इन्सानी हमदर्दी की बची हुई पूंजी को लेकर उठो। दुनिया तुम्हारे इन्तिज़ार में है कि तुम उसे इस सदी की जिहालत से निकालो, जिसने उसे पामाल और मश्रिक व मग़्रिब को मसमूम कर दिया है। क़यादत और हिदायत के अपने दैरीना मन्सब व मक़ाम की तरफ़ लौटो, आफ़ाक़ की वुसअतों में दावते इस्लामी का फ़रीज़ा अंजाम दो। कामयाबी व कामरानी हर मअरके में तुम्हारे हम रकाब होगी।

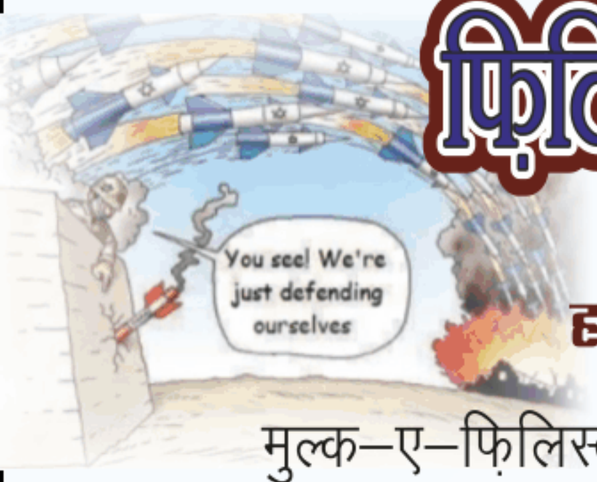

फ़िलिस्तीनी झगड़ा और इस्राईली अतिक्रमण

हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी (रह0)

मुल्क–ए–फ़िलिस्तीन का वह हरा–भरा हिस्सा जिस पर फ़िलिस्तीन की अर्थव्यवस्था व समाजशास्त्र का दारोमदार है, अतीत में यहूदी हुकूमत को हस्तान्तरित होता चला गया और अरब मुंह देखते रहे और सुलह की कोशिश करते रहे और यहूदियों ने अपना साम्राज्य बैतुल मुक़द्दस के शहर के महलों से जा मिलाया और धीरे–धीरे अरब आबादियों को धक्के देकर पीछे खिसकाते रहे। अंग्रेज़ अरब जनता को आर्थिक बदहाली और परेशानियों में घेरते रहे। अरबों की जाएदादें यहूदियों के लिए बड़े–बड़े दाम देकर खरीदते रहे और अरब आर्थिक बदहाली से परेशान होकर फ़िलिस्तीन छोड़ते रहे।

इस यहूदी देश का जब इस तरह से अरब देशों के सीनों को चाक करके पेबन्द जोड़ा गया तो फ़िलिस्तीन की अरब जनता लाखों की संख्या में देश छोड़ने पर मजबूर हो गई लेकिन जिहाद की रूह उनमें अब भी इस क़द्र है कि उनमें यहूदी हमलों का दिल खोलकर मुक़ाबला करते हैं और अरब इलाक़ों के लिए सिर्फ़ वही एक रोक हैं।

आज फ़िलिस्तीन में इस्राईली हुकूमत उसके पड़ोस के सारे देशों के लिए एक सख़्त परेशानी, तकलीफ़ और तनाव का मसला बन गई है। इस्राईल का इस इलाक़े में शुरू में कोई वजूद नहीं था। ब्रिटेन और पश्चिमी देशों ने इसको वहां दाख़िल करा दिया, फिर लगातार उसकी मदद करके उसको एक मज़बूत ताक़त बना दिया। जिसने अपने प्रभाव को बढ़ाया और क्षेत्र के अस्ली नागरिकों की बड़ी संख्या को जो लाखों में गिनी जाती है देश से बाहर कर दिया और जो यहां रह गए और देश से न निकाले जा सके उनको गुलामों की तरह बाक़ी रखा गया और उससे ज़्यादा दर्दनाक बात यह हुई उनके मुक़द्दस मक़ामों (पवित्र स्थलों) को बिगाड़ने और बदलने की कोशिश शुरू की गई जो ख़तरनाक हद तक पहुंच गई। इसी वजह से सिर्फ़ वहीं के अबर और मुसलमानों के लिए परेशानी का मसला नहीं रहा बल्कि दुनिया में बसने वाले सारे अरब और मुसलमान इससे परेशान और फिक्रमन्द हो गए। इस सिलसिले में फ़िलिस्तीन के लोगों ने अपनी दीनी व इस्लामी ग़ैरत के असर से मुक़ाबले की जो कोशिश की उसको बहुत कठोर तरीक़े से दबाने की कोशिश की जा रही है और उसके असर से वहां के लोगों में अपने मिल्ली और दीनी मुक़द्दस जगहों की हिफ़ाज़त के लिए जो हरकत और जोश पैदा हुआ उसने ग़ासिब (हड़पने वाला) ताक़त को सोच में डाल दिया है।

मसला सिर्फ़ यही नहीं है कि इस्राईली ताक़त अरबों और मुसलमानों को दबाने की कोशिश कर रही है और मुसलमान उसका मुक़ाबला कर रहे हैं बल्कि पश्चिमी ताक़तें बराबर इस्राईल को सहयोग और मदद से मज़बूत बना रही हैं। यह सिलसिला यूं तो लम्बे अर्से से जारी है लेकिन इस वक़्त इसने जो शक्ल अपना ली है वह पूरे इलाक़े के अमन व सुकून के लिए बड़ा ख़तरा बन गई है। क़िस क़द्र ज़्यादती और ज़ुल्म की बात है कि मस्जिद–ए–अक़्सा जो सिर्फ़ यही नहीं कि मुसलामानों की मुक़द्दस मस्जिद है बल्कि वह उन्हीं की आबादी के दरमियान है और वह पूरी तरह उससे जुड़े हुए हैं। इसको तोड़कर यहूदी इबादतगाह बनाने की कोशिश पूरी ताक़त और ज़बरदस्ती के साथ सभ्य कहलाई जाने वाली पश्चिमी ताक़तों की मदद के साथ की जा रही है। ऐसी सूरतेहाल में फ़िलिस्तीन के सिर्फ़ अरब मुसलमान ही नहीं बल्कि तमाम अरब देश और इस्लामिक देशों के मुसलमानों के लिए भी बेचैनी का और मिल्ली ग़ैरत का मसला बन गया है। इसमें दुश्वारी यह ज़रूर है कि मुसलमान और अरब देशों की सरकारें पश्चिमी ताक़तों के दबाव से वह नहीं कर रही हैं जो उनको करना चाहिए लेकिन उन देशों की मुस्लिम जनता का दबाव उनको आख़िरकार मजबूर करेगा कि वह इस ज़ुल्म व ज़्यादती को दूर करने की सही फ़िक्र करें।

अरब देशों के इस वक़्त जो हालात हैं वह सिर्फ़ अफ़सोसनाक ही नहीं बल्कि हर ग़ैरतमन्द मुसलमान के ग़ौर करने और समझने के हैं। अरबों ने जब इस्लाम का पैग़ाम अपने सीने से लगाया तो उनके आम आदमी ने भी नाज़ुक से नाज़ुक फ़रीज़ा (कर्तव्य) बहुत ख़ूबी से अंजाम दिया।

बैतुल मुक़द्दस को अरब मुसलमानों ने इस तरह फ़तेह किया कि दूसरे ख़लीफ़ा हज़रत उमर (रज़ि0) अपने गुलाम के साथ तश्रीफ़ ले गए और ईसाईयों ने न सिर्फ़ यह कि बैतुल मुक़द्दस की कुंजिया उनके हवाले कर दीं बल्कि उनको अपने गिरजे के एक रुख़ पर नमाज़ पढ़ने की इजाज़त भी दी, इसीलिए उसी जगह आज तक "मस्जिद–ए–उमर" के नाम की मस्जिद मौजूद है। उसी बैतुल मुक़द्दस को बाद के मुसलमान अपने पास न रख सके और ईसाईयों ने क़ब्ज़ा करके मुसलमानों को उससे बेदख़ल कर दिया और इस तरह 90 साल तक मुसलमान इससे महरूम रहे क्योंकि उनमें आपसी फूट थी, छोटे–छोटे ज़ाती मसलों पर आपसी लड़ाइयां थीं, ख़ुदग़र्ज़िया और निफ़ाक़ (वैमनस्य) था, लेकिन जब सुल्तान सलाहुद्दीन अय्यूबी ने उनको इस्लाम के नाम पर, अल्लाह और रसूल के नाम पर इकट्ठा किया और वह इकट्ठा हो गए तो ईसाईयों से बैतुल मुक़द्दस बड़े शानदार तरीक़े से वापस लिया।

बैतुल मुक़द्दस लेने के यह दो मामले बड़ा सबक़ सिखाने वाले है। एक में बहुत शांतिपूर्ण तरीक़े से काम लिया क्योंकि हज़रत उमर (रज़ि0) जैसा खुदातरस और मेयारी क़ायद (नेतृत्वकर्ता) था। दूसरे में दीनी ग़ैरत व कुर्बानी के जज़्बे के साथ लिया क्योंकि सुल्तान सलाहुद्दीन अय्यूबी जैसे मुख़्लिस (निष्ठावान) और जांबाज़ क़ायद था।

आज बैतुल मुक़द्दस लेना तो बड़ी बात है, वह छोटी–मोटी ताक़त जो उसके लिए कुछ करती वही मिटी जा रही है। जबकि मुसलमान पहले के मुक़ाबले तादाद में कई गुना हैं और कई गुना ज़्यादा संसाधनों के मालिक हैं, लेकिन.....

जंगें न तो केवल संख्या से जीती जाती है और न केवल संसाधनों के आधार पर जीती जाती हैं, इसके विपरीत इस्लाम हमको यह बताता है कि ईमान के साथ थोड़ी तादाद (संख्या) बड़ी तादाद पर भारी है। इस्लाम ने ईमान व इख़्लास की शर्त रखी है और यही ईमान व इख़्लास आज हमारी सियासत में, हमारी क़यादत (नेतृत्व) में और हमारी तदबीरों व हिकमत में सबसे कम है।

याद रहे! फ़िलिस्तीनियों की तबाही सिर्फ़ उन्हीं की तबाही नहीं बल्कि अल्लाह महफ़ूज़ रखे, यह अरबों की तबाही का पहला क़दम है जो इस्राईल ने हालात का ख़ूब जाएज़ा लेकर उठाया है और जिसमें वह ज़ाहिरी तौर पर अब तक कामयाब है। इस्राईली जो कि मिल्लत–ए–इस्लामिया के दसियों मुल्कों से भी छोटा है और उसका इतिहास बुज़दिली का, ज़िल्लत और बर्बादी का रहा है, आज मिल्लते इस्लामिया के बड़े मुल्क भी उसके सामने हाथ बांध–बांध कर खड़े हो रहे हैं। न बड़े आपसी मुनाफ़े की फ़िक्र न ग़ैरत व मान–सम्मान का ख़्याल, लेकिन बात वही है जो कुरआन मजीद की इस आयत में है कि:

"बिलाशुब्हा किसी भी क़ौम के साथ जो भी है अल्लाह उसको उस वक़्त तक हरगिज़ नहीं बदलता जब तक वह ख़ुद अपने अन्दर तब्दीली पैदा न कर लें।"

अमरीका के सहयोगी देशों को क्या कहा जाए, उन्होंने जब अपना दामन अमरीका के साथ जोड़ लिया है तो वह अमरीका और उसके मुतबन्ना (दत्तक पुत्र) इस्राईल को आंखे कब दिखा सकते हैं?!

इस्लामी दुनिया जिसके देशों को हम आज़ाद समझते रहे हैं, अस्ल में आज़ाद नहीं है। हर देश किसी न किसी बड़ी ताक़त से जुड़ा हुआ है, लेकिन ज़्यादा अफ़सोस की बात यह है कि वह ज़रूरत से ज़्यादा वफ़ादारी करने की बात करता रहा है जो न सिर्फ़ ग़ैरत के ख़िलाफ़ बल्कि मुल्क के फ़ायदे के खिलाफ़ साबित होती रहती है। फ़िलिस्तीनियों को ख़त्म करने के बाद क़रीब के मुल्कों की सलामती का क्या एतबार रह जाता है। एक के बाद एक इस्राईल की ज़द में आ सकते हैं।

अल्लाह तआला से दुआ है कि हालात को बेहतर बनाए और बातिल (असत्य) ताक़तों को हक़ (सत्य) के मुक़ाबले में नाकाम और नामुराद बनाए। आमीन! (इन्तिख़ाब अज़: आलम–ए–इस्लाम और साम्राजी निज़ाम)

इस्राईली रियासत और अन्तर्राष्ट्रीय ताक़तों का समर्थन

हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद वाज़ेह रशीद हसनी नदवी (रह०)

मस्जिद–ए–अक़्सा का मसला सिर्फ़ अरबों का मसला नहीं, यह दुनिया के तमाम मुसलमानों का मसला है। फ़िलिस्तीन के बारे में तो कहा जा सकता है कि वह अरबों का मसला है और इसमें अरबों की कोताही का बहुत बड़ा दख़ल है, क्योंकि इस्राईल का क़याम (स्थापना) यूं ही अमल में नहीं आ गया। यहूदियों की मक्कारी व फ़रेब एक हक़ीक़त है, लेकिन इस धोखे व मक्कारी से यहूदी कोई बड़ा फ़ायदा नहीं उठा सके, न वह कभी ग़ालिब क़ौम रहे। हमेशा मारे–मारे फिरे। दुनिया में कहीं उनको मान–सम्मान न मिला। अगर मक्कारी से किसी को फ़ायदा पहुंचता तो मक्कार आदमी हमेशा कामयाब होता। लेकिन ऐसा नहीं है, कुरआन मजीद कहता हैः

"और उन्होंने अपनी चालें चलीं और उनकी सब चालें अल्लाह के यहां है और वह चालें ऐसी (ग़ज़ब की) थीं कि उनसे पहाड़ भी टल जाते।" तो मक्कारी से कुछ नहीं होता।

इस्राईल की स्थापना के बहुत से कारण हैं; एक तो यह है कि उसको कुछ ताक़तवर मुल्कों ने गोद में लेकर अरबों के हाथ–पैर बांधकर उनके कंधे पर बिठा दिया और उसके बाद से अब तक उसकी हिफ़ाज़त कर रहे हैं। इस तरह इस्राईल क़ायम हुआ है। यह सोच बहुत ग़लत है कि इस्राईल को बरतरी (श्रेष्ठता) हासिल है। मिसालों के ज़रिये आपके सामने यह बात रखी जा सकती है। अब तक जितनी भी जंगें हुईं, उनका आप जाएज़ा लीजिए, इस्राईल को कामयाबी वहीं हुई जहां उसके सामने वाले ने कमज़ोरी दिखाई।

जब फ़िलिस्तीन ब्रिटेन के क़ब्ज़े में था, उसी वक़्त उसने तय कर लिया था कि इस्राईल की स्थापना यहां होगी ताकि अरबों पर कन्ट्रोल रहे। यह ब्रिटेन की पॉलिसी रही है कि जहां से उसको जाना पड़ा, वहां वह कोई फ़ित्ना फैलाने वाला छोड़कर गया, ताकि उसको बार–बार आकर हल करने का मौक़ा मिले। जैसे एक क़िस्सा है कि एक शख़्स ने अपना मकान बेचा और मकान ख़रीदने वाले से कहा कि मकान तो पूरा आपका है, लेकिन इसमें फ़लां कमरे में एक खूंटी है वह हमारी रहेगी और हमें इसके इस्तेमाल की पूरी आज़ादी होगी। ख़रीदने वाले ने सोचा कि एक खूंटी का मामला है, कोई हर्ज नहीं और इजाज़त दे दी। अब वह हर दूसरे–तीसरे दिन आता और कहता कि हम उस खूंटी को देखना चाहते हैं, हम उसमें अपना कोट टांगेंगे, आख़िरकार परेशान होकर ख़रीदने वाला इस बात पर मजबूर हो गया कि वह मकान वापस कर दे।

इसी तरह ब्रिटेन ने यह किया कि जिस देश में वह रहा अपनी खूंटी छोड़ कर गया और उस खूंटी के ज़रिये उसको मौक़ा मिलता रहा दख़ल देने का और इन क़ौमों में इतनी जुर्रत नहीं है कि उस मकान को पूरी तरह से आज़ाद करा सकें या खूंटी निकाल कर उसके सर पर ठोंक दें और उसके बाद कहें कि ख़ुद भी जाओ और अपनी खूंटी भी ले जाओ। जब यह जुर्रत पैदा हो जाएगी इन मुसलमान मुल्कों में या उन अरब मुल्कों में जो इस्राईल को झेल रहे हैं तो उस वक़्त इस्राईल का वजूद ख़तरे में पड़ जाएगा।

1948ई0 की जंग के बारे में एक अंग्रेज़ लेखक ने लिखा है कि इस्राईल की कोई फ़ौजी ताक़त नहीं थी और चार–पांच अरब मुल्क उसके मुक़ाबले पर थे, लेकिन यह मुक़ाबला ज़ाहिरी था। अरब फ़ौजों को हुक्म था न लड़ने का और बाद में जब कुछ मुजाहिदीन आगे बढ़ गए और इस्राईल के लिए ख़तरा बन गए थे तो उन फ़ौजियों को हुक्म दिया गया फ़ौरन वापसी का और हुक्म न मानने की सूरत में उनके अफ़सरों को हुक्म था कि उनको शूट कर दिया जाए।

1967ई0 की जंग का हाल भी सुन लीजिए, धोखा ही धोखा, हुक्मरानों ने धोखा दिया, फ़ौजों ने धोखा दिया, जनरलों ने धोखा दिया, क्योंकि जो जनरल थे वह या तो बर्तानिया के थे या फ्रांस के थे या यूरोप के सलाहकार

थे। उनको लड़ने से मजबूर कर दिया गया। एक किताब में लिखा है कि अरब संख्या में ज़्यादा थे लेकिन वह हार गए क्योंकि: "Because they were not united" यानि वह सब ख़यानत करने वाले थे और उसी बुनियाद पर सारे इन्क़िलाब हुए।

फ़िलिस्तीन के झगड़े के ऐतिहासिक विश्लेषण से साबित होता है कि इस्राईल की स्थापना और उसकी मज़बूती में पश्चिमी साम्राज्य, अरबों का आपसी झगड़ा, अरबा शासकों की लापरवाही और उसी वक़्त फ़िलिस्तीन की हिफाज़त की कार्यवाही न करना और फ़िलिस्तीनी क्रान्ति के आंदोलनों को सहयोग व संसाधन न मुहैया करवाने की केन्द्रीय भूमिका रही है। इस्लामी दुनिया के वह सभी देश जो इस्राईल के ख़िलाफ़ कोई असरदार रोल अदा कर सकते हैं, वह ऐसे मसलों में उलझे हुए हैं कि उनको अपनी सलामती और सुरक्षा की चिन्ता सताए रहती है। तुर्की के संबंध अरबों की बग़ावत और ख़िलाफ़त–ए–उस्मानिया के पतन के बाद अरबों के साथ असहयोग के रहे हैं, इसके मुक़ाबले में उसके इस्राईल से क़रीबी ताल्लुक़ात थे। मौजूदा हुकूमत ने जो इस्लामपसंद है, उसने कुछ अरबों से हमदर्दी का रवैया अपनाया मगर वह नॉटो का मेम्बर होने व यूरोपियन कम्यूनिटी में दाख़िल होने की कोशिश की वजह से अहम रोल अदा नहीं कर सकता। पाकिस्तान, ईरान, सूडान, हालते जंग में हैं और बहुत से देशों के इस्राईल से खुफ़िया संबंध हैं।

इसके विपरीत पूरी दुनिया खुलकर इस्राईल का समर्थन करती रही है, इसका प्रदर्शन 1918ई0 में हुआ और इसके बाद 2009ई0 में ग़ज़्ज़ा पर इस्राईली नाकाबन्दी और हवाई हमलों के दौरान खुले तौर पर हुआ, बल्कि इससे ज़्यादा अफ़सोसनाक पहलू यह है कि हमास की मदद के बजाय बहुत से देशों ने उनके विरोध का रवैया अपनाया और इस्राईल के साथ ख़ुफ़िया तौर पर सहयोग किया। यह झगड़ा पूरी तरह अरबी झगड़ा ही न बन सका, तो यह इस्लामी दुनिया का झगड़ा क्या बनता।

पूरी दुनिया के इस्राईल के सहयोग का अंदाज़ा निम्नलिखित "बाल्फ़ोर" के दस्तावेज़ से लगाया जा सकता है, जिसमें कहा गया है कि:

"ज़ियोनिस्टों के ताल्लुक़ से चार देशों ने अपने वादे पूरे किये और इसमें कोई शक नहीं कि ज़ियोनिस्ट चाहे वह हक़ (सत्य) पर हों या बातिल (असत्य) पर और चाहे वह अच्छे हों या बुरे, हमारी सभ्यता और हमारी मौजूदा ज़रूरत और हमारी भविष्य की अभिलाषाओं को पूरा करने में उनका अहम रोल है। वह अरब देशों में आबाद 700/हज़ार अरबों की ख़्वाहिशों से कहीं ज़्यादा अहमियत रखते हैं।"

मलिक अब्दुल अज़ीज़ के एक ख़त के जवाब में जिसमें उन्होंने फ़िलिस्तीन के मसले के बारे में अमरीकी पक्ष पर अपने ख़तरे का इज़हार किया था, अमरीकी राष्ट्रपति ट्रूमान ने कहा:

"अमरीका अपने स्टैंड पर अटल है, वह यह कि जनता को उनकी सरकार दी जाएगी और फ़िलिस्तीन में यहूदियों की कुछ आबादियां भी ज़रूरी हैं।"

27 अक्टूबर 1994ई0 में अमरीकी राष्ट्रपति क्लिंटन ने अपने इस्राईली दौरे में इस्राईली संसद में यह बयान दिया था कि:

"तुम्हारा पतन हमारा पतन है, अमरीका अब भी तुम्हारे साथ है और आगे भी रहेगा।"

दूसरी तरफ़ अरब मुल्कों में जिन ग़ैरतमंद मुसलमानों ने भी फ़िलिस्तीन के झगड़े में मदद करने की कोशिश की उनको तरह–तरह की तकलीफ़ें दी गईं, जेलों में डाल दिया गया, इस्लाम पसंद ताक़तों को बिल्कुल कुचल दिया गया। ख़ासकर शाम (सीरिया), उरदुन (जार्डन) और मिस्र में इख़्वानियों (ब्रदरहुड वालों को) जो फ़िलिस्तीन की मदद और सहयोग कर रहे थे, जेल की सलाख़ों के पीछे डाल दिया गया।

ऐसी सूरत में किसी अल्लाही मदद का इन्तिज़ाम हो जाए तो फ़िलिस्तीन का मसला हल हो सकता है। (और यह अल्लाह के लिए मुश्किल नहीं!)

इस वक़्त ज़रूरत फ़िलिस्तीन के मसले की जानकारी उपलब्ध कराने और मुसलमानों में जागरुकता पैदा करने की है। इसलिए कि जानकारी के बाद ही जागरुकता पैदा होती है और जागरुकता के बाद ही अमल की ताक़त और इरादे की ताक़त पैदा होती है।

(इन्तिख़ाब अज़: मसला फ़िलिस्तीन, सामराज और आलमे इस्लाम)

ग़ज़्ज़ा-इस्राईल जंग - मुजरिम कौन?

मौलाना जाफ़र मसऊद हसनी नदवी

1948ई0 में इस्राईली रियासत के क़ायम होने के वक़्त से मग़्रिब (पश्चिम) उसकी परवरिश कर रहा है, जबकि इसमें कोई शक नहीं कि इस्राईल का क़ायम होना सौ प्रतिशत ज़ुल्म व जब्र, हलाकत व बर्बादी और जिलावतनी (देस निकाला) पर आधारित है। इसके लिए जाएज़ है कि वह चाहे कितने ही संगीन जुर्म कर ले, कितना ही नाहक़ ख़ून बहाए और कितने ही बेगुनाहों की जान ले ले, या कितने ही फ़िलिस्तीनियों को बेघर कर दे और चाहे कितनी ही बाइज़्ज़त औरतों को अपनी हवस का निशाना बना ले। अफ़सोस है कि इन्सानियत का यह नंगा नाच पश्चिम की निगरानी में हो रहा है बल्कि वह इसकी हिम्मत अफ़ज़ाई कर रहा है और वह उसे फ़ौज भी मुहैया कर रहा है और आख़िरी हद तो यह है कि इन्सानियत के इस क़त्लेआम पर वह इस्राईल को मुबारकबाद दे रहा है। सच्ची बात यह है कि अगर यही काम किसी और हुकूमत ने किया होता तो यही मग़्रिबी देश उस पर ज़िन्दगी तंग कर देते और उसको ऐसी सज़ा देते कि दोबारा वैसी हरकत करने की कोई ताब भी न लाता।

बहुत से लोग यह समझते हैं कि इस वक़्त हमारा मुक़ाबला महज़ नाजाएज़ इस्राईल से है लेकिन सच्ची बात है कि हमारा अस्ल मुक़ाबला उस मग़्रिब से है जिसने इस नाजाएज़ रियासत को जन्म दिया ताकि उसे अपने राजनीतिक, पूंजीवादी और सैन्य फ़ायदे भरपूर हासिल होते रहें। यही वजह है कि पहले दिन से वह इस्राईल को उसकी हिमायत व मदद वाली हर चीज़ मुहैया करता रहा है।

इस्राईली रियासत वह नाजाएज़ पौधा है जो मग़्रिब ने फ़िलिस्तीन की मुक़द्दस सरज़मीन पर इस नियत से लगाया था कि उसके ज़रिये अरब देश पर अपना फ़िरऔनी शासन जमा सके और उसकी नकेल अपने हाथ में ले सके फिर उसको जैसे चाहे घुमाता रहे।

यह भी एक हक़ीक़त है कि इस्राईल मग़्रिब के अग़राज़ व मक़ासिद (लक्ष्य व उद्देश्य) से अलग एक आज़ाद रियासत का नाम हरगिज़ नहीं है? बल्कि इस्राईल सौ फ़ीसद उसके हुक्म का बन्दा और उसके इशारों का गुलाम है। वह जहां खड़ा कर दे उसको वहीं खड़े होना होगा। वह जब चलने का हुक्म कर दे तब उसे चलकर दिखाना होगा। वह जब उसे हमले का इशारा करे तभी वह हमलावर होगा। यहां तक कि वह ज़्यादती पर भी उसी वक़्त आमादा होगा जब उसे यूरोप की शह हासिल हो।

जहां तक मग़्रिब के ग़ैर जानिबदार (अपक्षपाती) और आलमे अरबी और इस्राईल के बीच एक इन्साफ़ पसंद मीडिएटर बनने की बात है और इसको इस्राईल का हमनवां समझने का ताल्लुक़ है तो यह सब बातें सरासर झूठ और धोखा हैं, बल्कि यह उसकी स्याह तारीख़ से अनजान होने का नतीजा है। हमें मग़्रिब का अस्ल चेहरा पहचानना चाहिए और आलमे अरबी के बारे में उसके नापाक इरादों से बाख़बर होना चाहिए।

ग़ज़्ज़ा में आज तबाही व बर्बादी और क़त्ल व लूटपाट की जो शर्मनाक ख़ूनी दास्तान लिखी जा रही है और वहां बमों और मिज़ाइलों की जो बारिश की जा रही है, इन्सानियत के इस ग़ैर मामूली क़त्ले आम पर मग़्रिब का चुप्पी साधना इस बात का सुबूत है कि वह इस्राईल के साथ खड़ा है और वह उसके बराबर का मुजरिम है। वाक़्या यह है कि अगर उनका यह आपसी ताल्लुक़ न होता तो इस्राईल का दम नहीं था कि वह अकेले किसी फ़िलिस्तीनी को ज़रा भी चोट पहुंचा सकता और किसी को चोट पहुंचाना तो दूर की बात बल्कि उसकी यह हिम्मत भी न थी कि वह ख़ुद अपना बचाव करता, मगर यह बात है कि मग़्रिब के भरपूर समर्थन और इस्राईल के साथ हर मौक़े पर खड़ा रहने ने इस्राईल को इस क़ाबिल बना दिया किवह अपने पैरों पर चलने के लाएक़ हो गया है।

मसला-ए-फ़िलिस्तीन और मुसलमानों की ज़िम्मेदारी

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

आलमी मंज़रनामे पर मुसलमानों के पतन के बाद से मुसलमान मुख़्तलिफ़ मसलों का हमेशा सामना करते रहे हैं। यह मसले अलग–अलग देशों में मुसलमानों के सामने आते रहे और अलग–अलग ज़मानों में मुसलमानों का इनसे वास्ता पड़ा है लेकिन फ़िलिस्तीन का मसला एक ऐसा मसला है जिसका असर अन्तर्राष्ट्रीय भी रहा है और हमेशा रहा है और पूरी इस्लामी दुनिया इसकी कसक महसूस करती रही है और शायद ही कोई बदक़िस्मत मुसलमान ऐसा होगा जिसके दिल में इसकी चुभन न हो।

मस्जिद–ए–अक़्सा बहुत से पैग़म्बरों की यादगार रही है। मुसलमानों के लिए इसको क़िब्ला–ए–अव्वल की हैसियत हासिल रही है। मेराज के मौक़े पर रसूलुल्लाह (स0अ0व0) की पहली मंज़िल वही थी। वहीं से आप (स0अ0व0) नबियों (अलैहिस्सलाम) की इमामत फ़रमाई थी। इस सरज़मीन के बारे में क़ुरआन करीम ने सरापा बरकत होने की गवाही दी है। मुसलमानों का इससे जज़्बाती लगाव एक नेचुरल चीज़ है।

इस्लामी इतिहास का वह दिन बड़ा नामुबारक था जिस दिन नादान तुर्कों ने ख़िलाफ़त का ख़ात्मा किया था। इसके बाद मुसलमान ताश के पत्तों की तरह बिखर गए। रही–सही साख भी जाती रही। उसी दिन से क़िब्ला–ए–अव्वल पर ज़ियोनिस्ट (ज़ियोनिज़्म –एक यहूदी आंदोलन) पंजे गड़ने शुरू हो गए थे।

एक दिन वह भी था जब कुछ यहूदी सुल्तान अब्दुल हमीद के पास सिफ़ारिश लेकर गए थे और उन्होंने फ़िलिस्तीन में रिहाइश के लिए थोड़ी ज़मीन की मांग की थी तो सुल्तान ने ज़मीन से एक चुटकी मिट्टी लेकर कहा था कि मैं तो वहां इसके बराबर भी देने को तैयार नहीं हूं लेकिन जब....ख़िलाफ़त पर ज़वाल आया तो नामो निशां कब तक।

यूरोप ने एक बनी बनाई साज़िश के तहत यहूदियों को फ़िलिस्तीन में बसाने का काम शुरू किया। यहूदियों की अमानवीय हरकतों ने पूरे यूरोप को मुसीबत में डाल रखा था। हिटलर ने आजिज़ आकर वह इन्तिहाई क़दम उठाया था जिसकी वजह से वह मिसाल बन गया। उनकी ज़ालिमाना और शातिराना चालों को जानने के लिए इतिहास का अध्ययन ज़रूरी है। हर देश में उन्होंने ऐसे–ऐसे अमानवीय षडयन्त्र किये थे कि आम इन्सानों के लिए वह नासूर बनकर रह गए थे और यह सबकुछ इत्तिफ़ाक़ न था। उनके प्रोटोकॉल में यह सारी हक़ीक़तें उसूली तौर पर मौजूद हैं। वह ख़ुद को ख़ुदा की औलाद और ख़ुदा का महबूब समझते रहे हैं और बाक़ी सारी दुनिया उनके नज़दीक उनकी गुलाम है। उनकी साज़िश यह थी कि ग़ैर यहूदियों को हर लिहाज़ से ऐसा पस्त कर दिया जाए कि दुनिया उनकी गुलामी पर मजबूर हो जाए। यह एक पूरा प्लान था जिसको पूरा करने के लिए वह सारी योग्यताएं लगा रहे थे और आज भी वह इस काम में लगे हुए हैं।

यूरोप को उनसे छुटकारा हासिल करने का कोई तरीक़ा नहीं सूझा तो उसने यह जतलाया कि फ़िलिस्तीन यहूदियों की मीरास (विरासत) है, उनको वहां हिस्सा मिलना चाहिए। इस तरह धीरे–धीरे यहूदियों को वहां आबाद किया जाने लगा। इसके यूरोप को दो फ़ायदे हुए; एक तो उनकी शातिराना चालों से अमन हुआ, दूसरे यह कि मुसीबत मुसलमानों के सर थोप दी गई।

1920ई0 में बाक़ायदा अंग्रेज़ी हाई कमिश्नर के ज़रिये उनकी मुल्की हुकूमत का ऐलान हुआ। इसके

बाद अंग्रेज़ों की सरपरस्ती में यहूदियों ने अपने क़दम मज़बूत करने शुरू किये और वह दुनिया के अलग–अलग देशों से वहां आकर आबाद होने लगे। जब उनकी संख्या बढ़ी और उन्होंने अपने शातिराना मिज़ाज के मुताबिक़ बाल व पर निकालना शुरू किये तो मुसलमानों से उनकी कशमकश शुरू हुई फिर 1928ई0 से ख़ूनी संघर्ष शुरू हो गया।

1948ई0 में बाक़ायदा "हुकूमत–ए–इस्राईल" के क़ायम होने का ऐलान कर दिया गया और यहूदियों ने कई अरब इलाक़ों पर क़ब्ज़ा करके अपनी हुकूमत क़ायम कर ली।

9 जून 1967ई0 का दिन मुसलमानों के लिए बुरा दिन बनकर आया, उस दिन तमाम मुसलमानों को रुस्वाई का सामना करना पड़ा और यहूदी फ़ौजें बैतुल मुक़द्दस में दाख़िल हो गईं। आठ सौ साल बाद यह पहला नामुबारक दिन था कि मुसलमान मस्जिद–ए–अक़्सा में जुमा की नमाज़ अदा न कर सके, वह दिन है और आज का दिन, कशमकश जारी है और इस्राईल को बड़ी ताक़तों की तरफ़ से भरपूर समर्थन प्राप्त है।

यहूदियों ने पहले दिन से तय कर लिया था कि अगर हमें दुनिया पर हुकूमत करनी है तो दो चीज़ों पर पूरी तरह से क़ब्ज़ा करना होगा; एक अर्थव्यवस्था पर और दूसरे मीडिया पर। अपने इस मंसूबे को पूरा करने के लिए उन्होंने हर तरह की शातिराना चालें चलीं और धीरे–धीरे वह दुनिया की अर्थव्यवस्था पर हावी होते चले गए। आज अमरीका के बड़े–बड़े बैंक उनके क़ब्ज़े में हैं और दुनिया के अहम अख़बारों को उन्होंने ख़रीद रखा है। कोई ख़बर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उनकी मर्ज़ी के बग़ैर छप नहीं सकती। अमरीका जिसको दुनिया की सबसे बड़ी ताक़त कहा जाता है, उसके महत्वपूर्ण पदों पर यहूदी या ख़ालिस यहूदी ज़हनियत रखने वाले ईसाई क़ाबिज़ हैं। आज अमरीका का बड़ा तबक़ा उनसे परेशान है लेकिन बेबस है और अमरीका के पहले क़ानूनसाज़ की बात शब्दशः पूरी हो रही है कि अगर तुमने यहूदियों को यहां बसने का मौक़ा दिया तो एक दिन आएगा कि वह आक़ा होंगे और तुम उनकी गुलामी कर रहे होगे।

इस्राईल की किसी हार को अमरीका बर्दाश्त करने को तैयार नहीं है। उसके लिए सारे सरकारी प्रोटोकाल और अन्तर्राष्ट्रीय संधियां धरी की धरी रह जाती हैं और उस सबकुछ की छूट दे दी जाती है जिसके बारे में दूसरे के लिए सोचना भी संभव नहीं है।

यहूदियों के मन्सूबे में "ग्रेटर इस्राईल" की स्थापना भी है जिसमें दुनिया के अहम इस्लामी देश ख़ास तौर पर शामिल हैं। हिजाज़–ए–मुक़द्दस का बड़ा हिस्सा भी उसमें शामिल किया गया है। यहूदी अपने इस मन्सूबे को पूरा करने के लिए हर तरह की साज़िशें करते रहते हैं। उनके लिए न कोई उसूल है और न इन्सानियत की उनके यहां कोई हक़ीक़त है। हर ज़माने में नबियों को क़त्ल करने वाले वह हैं, हज़रत ईसा (अलैहिस्सलाम) को अपने ख़्याल के मुताबिक़ सूली पर चढ़ाने वाले वह हैं। ईसाईयों के साथ उनकी लम्बी–लम्बी ख़ूनी लडाइयों की दास्ताने इतिहास में मौजूद हैं। न वह किसी के हुए और न होंगे। अपने फ़ायदे के लिए हज़ारों की जान ले लेना बल्कि मुल्कों को तबाह कर देना उनके लिए मामूली बात है।

ऐसी सूरतेहाल में जबकि वह इस वक़्त मुसलमानों से झगड़े में हैं लेकिन हर एक को होशियार रहने की ज़रूरत है, इससे पहले कि इस्राईल उसकी मजबूरी बन जाए फिर कुछ बनाए न बने।

इस्राईल अमरीका की मजबूरी है और अमरीका इस वक़्त दुनिया की बड़ी ताक़त है, इसलिए बहुत से देश इस्राईल का साथ देने पर मजबूर हैं। वरना वाक़्या यह है कि इसकी मिसाल ऐसी है कि जैसे कोई किसी के घर पर ज़बरदस्ती क़ब्ज़ा कर ले और जब घर का मालिक अपनी जगह मांगे तो उससे वह मामला किया जाए जैसे वह किसी दूसरे के घर की मांग कर रहा हो।

इस्राईल फ़िलिस्तीन का हिस्सा था, उस पर ज़बरदस्ती क़ब्ज़ा किया गया। फिर अगर एक फ़िलिस्तीनी अपने हक़ की मांग करता है तो यह उसके लिए बहुत बड़ा जुर्म है। अगर वह बेचाना चंद ढेले फेंक दे तो वह ज़ालिम है और अगर उनकी आबादियों की आबादियां तबाह कर दी जाएं तो उसमें कोई हर्ज नहीं।

एक अरब पत्रकार फ़िलिस्तीन के अपने एक

ताज़ा दौरे की रिपोर्ट में लिखता हैः

"ग़ाज़ा पट्टी के दौरे में मैंने दुनिया की सबसे बड़ी जेल का अनुभव किया। पूरे ग़ज़्ज़ा को फ़ौलादी दीवारों और ऐसे तारों से घेर दिया गया है जिनमें करन्ट दौड़ रहा है। लाखों इन्सान उसमें क़ैद की ज़िन्दगी गुज़ार रहे हैं, लेकिन उन्हें क़ैदियों के अधिकार भी हासिल नहीं हैं। एक क़ैदी को भी खाने–पीने और दवा–इलाज की सहूलत हासिल होती है लेकिन ग़ज़्ज़ा के क़ैदियों को कोई हक़ हासिल नहीं है। हर तरफ़ से उनको घेर दिया गया है। इस्राईल के जाजूस विमान लगातार निगरानी करते रहते हैं"

अभी जो ताज़ा परिस्थिति है वह रोंगटे खड़े कर देने के लिए काफ़ी है। दस हज़ार के क़रीब फ़िलिस्तीनी शहीद हो चुके हैं जिनमें पांच हज़ार मासूम बच्चे हैं। लाखें बिखरी पड़ी हैं। अस्पतालों और स्कूलों को तबाह कर दिया गया है। पीने के पानी को लोग तरस रहे हैं। मस्जिदें, मदरसे, अस्पताल और यूनिवर्सिटियां खण्डहरों मे तब्दील हो चुकी हैं। जियोनवादी (सहयूनी) व्यवस्था की दास्ताने चप्पे–चप्पे पर दिखाई देती हैं।

लेकिन इन्सानितय दम तोड़ रही है, आंखों का पानी मर चुका है, मानवाधिकार की अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं यहूदी शिकंजों में हैं, आज़ादी का नारा लगाने वाले इन्सानों को गुलामी के गढ़े में धकेलने के लिए तैयार हैं, किसी के मुंह में ज़बान नहीं जो खोले और अगर खोले भी तो सुनने वाला कौन है और पहुंचाने वाला कौन है। मीडिया किसके हाथ में है– है जुर्मे ज़ईफ़ी की सज़ा मर्गे मफ़ाजात

मगर यह हुआ कैसे?! जिन लोगों को देने के लिए पैदा किया गया था, आप वह क्यों दूसरों के सामने हाथ फैलाए खड़े हैं? वह दुनिया की कुल आबादी का चौथाई कहे जाते हैं। आज वह दुनिया के मन्ज़रनामें पर ज़ीरो क्यों हैं? जिन्होंने दुनिया को जिहालत व दरिन्दगी से निकालकर इल्म व हुनर से भर दिया था, जिन्होंने इन्सानों को इन्सानियत का सबक़ पढ़ाया था और इन्सानों की तरह जीना सिखाया था, आज दुनिया में वह रुस्वा क्यों हो रहे हैं? इसका जवाब इस्लामी इतिहास के सुनहरे पन्नों में मौजूद है। जब तक मुसलमानों ने अपना सबक़ याद रखा, अपनी ज़िम्मेदारियों को पूरा किया, आसमानी निज़ामें ज़िन्दगी, निज़ामें अख़लाक़ का अपनी कथनी व करनी से नमूना पेश करते रहे, दुनिया उनके क़दम चूमती रही, फिर जब उन्होंने दुनिया का सबक़ भुला दिया, वह दुनिया के क़दमों में गिर गए। अपनी हक़ीक़त भूल गए। वह क़ौमों में बंट गए। उन्होंने तरह–तरह के बुत बना लिए, ज़िन्दगी का मक़सद कुछ का कुछ हो गया तो हालात भी बदल गए।

पूरे इस्लामी इतिहास में जब–जब मुसलमानों को हार का सामना करना पड़ा, उसके पीछे यही वजहें काम कर रहीं थीं। वरना हक़ीक़त यह है कि सही इस्लामी शिक्षाओं के अन्दर ऐसी कशिश है कि वह दुनिया की एक ज़रूरत है और जहां दुनिया को इसका एहसास पैदा हो रहा है वहां हालात बदल रहे हैं और जब–जब मुसलमानों ने अपनी ज़िम्मेदारियां फ़रामोश की हैं हालात ने उनको सबक़ सिखाया है।

मुसलमानों के ग़लत तरीक़े पर ज़िन्दगी गुज़ारने की वजह से इस्लाम के बारे में ग़लतफ़हमियां पैदा होती हैं और एक बड़ी संख्या हक़ीक़त तक पहुंचती ही नहीं और पुराने विचारों पर सारी कार्यवाहियां करती रहती हैं। इसके नतीजे में दुनिया को भी बड़े नुक़सान भुगतने पड़ रहे हैं।

ज़िम्मेदारी मुसलमानों की भी है और अन्तर्राष्ट्रीय ताक़तों की भी। मुसलमानों को सही नमूना पेश करने की ज़रूरत है और दुनिया के लोगों को ठण्डे दिल से सोचने की ज़रूरत है वरना यह कशमकश जो अलग–अलग देशों में ख़ूनी संघर्ष की शक्ल में जारी है उसको बन्द नहीं किया जा सकता और इसका नुक़सान सिर्फ़ मुसलमानों को ही नहीं होगा बल्कि पूरी दुनिया को इसके नुक़सान भुगतने पड़ेंगे।

फ़िलिस्तीन का मसला मुसलमानों के लिए धड़कते हुए दिल की हैसियत रखता है। वहां एक तरफ़ा कार्यवाहियां पूरी दुनिया के मुसलमानों के जज़्बात से खिलवाड़ के बराबर हैं। उसको समझने की ज़रूरत है और दूसरी तरफ़ मुसलमानों को भी अच्छा नमूना पेश करने की ज़रूरत है, हर देश में और ख़ास तौर पर जहां वह ग़ैरों से लड़ रहे हैं।

फ़िलिस्तीन के मुद्दे पर एक नज़र

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

कहा जाता है कि जंगलराज में जिसकी लाठी उसकी भैंस, लेकिन सभ्य क़ौमों में क़ानून का राज होता है और सिर्फ़ ताक़तवर या अमीर या असरदार होने की वजह से कोई किसी कमज़ोर से कमज़ोर व्यक्ति को दबा नहीं सकता, लेकिन गहरी नज़र डालने से बिल्कुल साफ़ हो जाता है कि आज भी जंगलराज का वही पुराना उसूल पूरी दुनिया में चल रहा है और सभी फ़ैसले ताक़त के बल पर लागू किये जा रहे हैं। फ़र्क़ है तो इतना कि पहले ज़ालिम को ज़ालिम कहा जाता था, लेकिन अब ज़ालिम ने प्रोपगन्डा का हुनर सीख लिया है, उसे अब ज़ालिम के बजाए डंके की चोट पर निजात दिलाने वाला क़रार दिया जाता है और एक बड़ी संख्या उसको मसीहा मान भी लेती है। अमरीका ने हीरोशिमा और नागासाकी पर एटम बम गिराकर कई लाख इन्सानों को बच्चों, बूढ़ों और औरतों समेत पलक झपकते मौत की नींद सुला दिया, लेकिन इन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ बर्नाटिका का आर्टिकल लिखने वाले एक प्रचण्ड विद्धान ने उसको एक ऐसा कारनामा क़रार दिया जिसने इन्सानियत को तबाही से बचा लिया है। अफ़्ग़ानिस्तान, इराक़ और वियतनाम में इसी अमरीका ने कई–कई लाख इन्सानों को बच्चों, औरतों समेत मौत के घाट उतार दिया। न जाने कितनों को ज़िन्दगी भर के लिए अपाहिज बना दिया। हमले की वजहें भी ऐसी बताई गईं जिनका बाद में झूठा होना साबित हो गया। ख़ुद अमरीका ने उनका झूठा होना कुबूल किया लेकिन अमरीका सुपर पॉवर है, अमीर है, लगभग सभी देश हाथ फैलाए उसके दरबार में हाज़िरी लगाते हैं। मीडिया का पूरा सपोर्ट उसको हासिल है। लिहाज़ा आपने कभी नहीं सुना होगा कि कोई उसको ज़ालिम व आतंकवादी कह रहा है, वह तो मसीहा है लोकतन्त्र का रखवाला है, भला ज़ालिम कैसे हो सकता है? इससे पहले ब्रिटेन सुपर पॉवर था तो उसका भी यही हाल था। सारी दुनिया पर ज़बरदस्ती क़ब्ज़ा किया, उनके ख़ज़ानों को लूटकर उन्हें कंगाल बना दिया। ख़ुद अमीर से और अमीर हो गया और लोकतन्त्र का रखवाला और मसीहा होने और मानवीय मूल्यों को उन्नति की चोटी तक पहुंचाने का ख़िताब अलग से हासिल किया।

भूमिका ज़रा लम्बी हो गई लेकिन कहने का मक़सद यह है कि पश्चिमी क़ौमों के दोग़लेपन को हम सामने रखें तो फ़िलिस्तीन के मुद्दे पर उनके फ़रेब और मक्कारियों को समझने में मदद मिलती है। यह एक ऐसी ज़मीन है जहां सदियों से मुसलमान बहुसंख्यक रहे हैं, ईसाई और यहूदी अल्पसंख्यक रहे। फिर यह ज़मीन पश्चिमी क़ौमों के क़ब्ज़े में आ गई। दूसरी तरफ़ जर्मनी में हिटलर ने यहूदियों का बेरहमी से क़त्लेआम किया और उपनिवेशवाद (कोलोनियलिज़्म) ने फ़िलिस्तीन के बहुसंख्यकों को दरकिनार करके वहां यहूदियों का एक देश बनाने का फ़ैसला कर लिया। अगर कहीं देश बनाना ही था तो यूराप या अमरीका में बनाया जाता, फ़िलिस्तीन में तो यहूदियों की संख्या आटे में नमक के बराबर भी नहीं थी, यूरोप व अमरीका में तो उनकी बड़ी संख्या थी। लेकिन जैसा कि ऊपर कहा गया कि प्रोपगन्डे में बड़ी ताक़त होती है, प्रोपगन्डा यह किया गया कि यह कभी यहूदियों का वतन रहा है। हज़रत सुलेमान (अलैहिस्सलाम) के ज़माने में उनकी हुकूमत रही है, लिहाज़ा यहां यहूदियों का हक़ है और यह भुला दिया गया कि यहूदी वहां दूसरी जगह से आए तो मौजूदा लोगों के पूर्वज पहले से आबाद थे, यही बाद में मुसलमान हो गए और वहां शुरू से रहने वाले हैं। यह भी एक ऐतिहासिक हक़ीक़त है कि यहूदियों को वहां से कई बार देश निकाला दिया गया और यह देश निकाला कभी भी मुसलमानों के ज़रिये नहीं हुआ। यह काम दूसरों ने किया। जब इस्राईल बना तो यहूदी वहां नाममात्र के थे। बहरहाल ताक़त के ज़ोर पर यहूदियों को वहां एक छोटा सा हिस्सा दे दिया गया। मस्जिद–ए–अक़्सा और बैतुल मुक़द्दस मुसलमानों के पास रहा। फिर पड़ोसी अरब

देशों से इस्राईल की नूराकुश्ती हुई जिसके नतीजे में बैतुल मुक़द्दस और मस्जिद–ए–अक़्सा जिससे तमाम मुसलमानों की अक़ीदतें जुड़ी हुई हैं उनके क़ब्ज़े में आ गए। फ़िलिस्तीनियों के पास एक ग़ज़्ज़ा पट्टी है दूसरे मग़्रिबी किनारा, यानि पूरी ज़मीन इस्राईल ने हड़प ली है। सिर्फ़ थोड़ी सी ज़मीन पर फ़िलिस्तीनी तंगी के साथ रहने पर मजबूर कर दिये गए। उनका सबकुछ छीन लिया गया। अपने ही इलाक़े में बंजारों की ज़िन्दगी गुज़ारने पर मजबूर कर दिया गया और उस इलाक़े में भी उन्हें पूरी आज़ादी नहीं। पूरी तरह इस्राईल के रहम व करम पर हैं। ऐसे हालात में अगर वह तिलमिलाते हैं तो क्या बेजा तिलमिलाते हैं? जो कुछ हो सकता है वह करते हैं तो क्या बेजा करते हैं? मान लीजिए कि एक शख़्स की दस एकड़ ज़मीन हो, कोई उस पर क़ब्ज़ा कर ले, वहां कुछ किसानों को लाकर आबाद कर दे, मालिकों को ज़मीन के किनारे रहने की इजाज़त दे, दूसरी जगह से आकर आबाद होने वाले उन्हीं मालिकों से ज़मीन का काम लें और सिर्फ़ मामूली पैदावार ज़िन्दा रहने के लिए दें, कभी उसको भी बन्द कर देने की धमकी दें तो क्या मालिकों का ख़ून नहीं खौलेगा? और क्या वह क़ब्ज़ा करने वाले पर हमला करके अपनी ज़मीन छुड़ाएं तो यह आतंकवाद कहलाएगा? उनके हमलों की वजह से अगर बाहर से आकर आबाद होने वालों को कुछ नुक़सान हो जाए तो क्या उसको मालिकों की बेरहमी कहा जाएगा?

इसीलिए फ़िलिस्तीनियों के मौजूदा हमले को संयुक्त राष्ट्र के जनरल सेक्रेट्ररी ने अचानक हमला नहीं माना। इस्राईल और उसके समर्थकों ने इस पर बड़ा हंगामा किया, लेकिन वह बुनियादी तौर पर अपनी राय से नहीं हटा।

अब तमाशा यह है कि इस्राईल हमले पर हमले कर रहा है। उसके हमलों में नौ हज़ार से ज़्यादा लोग शहीद हो चुके हैं, जिनमें चालीस प्रतिशत मासूम बच्चे हैं। इस पर पूरी दुनिया अरब देशों समेत ख़ामोश है और फ़िलिस्तीनियों के हमले से जो नुक़सान हुआ था उसका रोना रोया जा रहा है। क्या फ़िलिस्तीनियों की जान की कोई क़ीमत नहीं? उनका खाना–पीना सब बन्द है, दवांए ख़त्म हो चुकी हैं, इस्राईल ने बहाने बनाकर अस्पतालों पर जानलेवा हमले किये हैं, लेकिन उसे कोई आतंकवादी नहीं कह रहा न ही कोई उसे ज़ालिम कह रहा है, हर तरफ़ सन्नाटा है, दुनिया अपने काम में लगी हुई है, सऊदी अरब जैसे देश में इन हालात में जश्न मनाया गया, क्या इससे बढ़कर कोई बेग़ैरती हो सकती है।

हमें इन हालात में अपनी दुआओं में अपने इन भाइयों को याद रखना चाहिए जिन्होंने अपनी जुर्रत व हिम्मत से इस्राईल के अपराजेय होने के दावे को ख़ाक़ में मिला दिया और उनके गुब्बारे की हवा निकाल दी और मुद्दे को पूरी तरह से समझना चाहिए ताकि कम से कम यह समझ सकें कि ज़ालिम और दहशतगर्द कौन है और मज़लूम (पीड़ित) कौन है और ज़ालिम के ज़हरीले प्रोपगन्डे से प्रभावित न हों।

अल्लाह तआला ग़ैब से हमारे भाइयों की मदद करे और ज़ालिमों पर अपना ग़ैबी लश्कर मुक़र्रर करके उनको क़ैफ़र–ए–किरदार (कर्म–दण्ड) तक पहुंचाए। आमीन!

अरब देशों की अफ़सोसनाक सूरतेहाल

मुफ़क्किर–ए–इस्लाम हज़रत मौलाना
सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी (रह०)

"इस वक़्त सूरतेहाल यह है कि अरब देश कुछ अनिवार्य कारणों के आधार पर पश्चिम से जंग करना भी चाहें तो वह इसलिए जंग नहीं कर सकते कि वह उसके कर्ज़दार हैं और उसकी मदद के मोहताज हैं। जिस क़लम से वह पश्चिम के साथ संधि पर हस्ताक्षर करते हैं, वह क़लम भी पश्चिम का ही बना हुआ है। अगर वह मुक़ाबला करते हैं तो जंग के मैदान में उसी गोली का इस्तेमाल करते हैं जो पश्चिम के कारख़ाने में तैयार की गई है। अरब देशों की यक एक बड़ी ट्रेजेडी है कि वह अपने दौलत के भण्डारों और ताक़त के स्त्रोतों से ख़ुद फ़ायदा न उठा सके। अरब देशों के लिए ज़रूरी है कि वह अपनी ज़रूरतों को ख़ुद पूरा करने वाले हों। व्यापार व आर्थिक व्यवस्था, आयात–निर्यात, राष्ट्रीय उधोग, सेना की ट्रेनिंग और मशीन तथा यंत्रों की तैयारी पर उसका मुकम्मल क़ब्ज़ा हो। ऐसे लोगों को प्रशिक्षित किया जाए जो हुकूमत की ज़िम्मेदारियों को संभाल सकें और सरकारी कामों को पूरी ईमानदारी से अंजाम दें।" (आलम–ए–अरबी अहल–ए–मग़्रिब की आमाजगाह क्यों: 9)

यहूदी क़ौम और फ़िलिस्तीनी ज़मीन पर उनका हक

तौरेत व कुरआन की रोशनी में

अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी

हरमैन शरीफ़ैन (मक्का–मदीना) के बाद जिस सरज़मीन को सबसे ज़्यादा बरकत वाली और सबसे बढ़कर पाक होने का शर्फ़ (सम्मान) हासिल है, वह बिलाशुब्हा फ़िलिस्तीन की सरज़मीन है। इसी के पाक शहर मुसलमानों का क़िब्ला–ए–अव्वल यानि मस्जिद–ए–अक़्सा बसी है। अल्लाह ने इस पूरे इलाक़े को ज़ाहरी व बातिनी (बाहरी–अन्दरूनी) ख़ूबसूरती से सजा रखा है।

नील व फ़रात के बीच में स्थित यह जन्नत जैसी सरज़मीन हमेशा के लिए "पाक जगह" कहलाई। यहीं इस्माईल (अलैहिस्सलाम) व इस्हाक़ (अलैहिस्सलाम) पैदा हुए यही याकूब (अलैहिस्सलाम) व उनकी औलादें परवान चढ़ीं। इसी चमन में यहया व ईसा (अलैहिस्सलाम) ने आंखें खोली। यहीं दाऊद व सुलेमान (अलैहिस्सलाम) की सल्तनतें क़ायम हुईं। यहां की फ़िज़ाएं रसूलों की नफ़्सों से महकती हैं। यहां की मिट्टी नुबूव्वत के नूर से दमकती है। कहने का मतलब यह है कि इब्राहीम ख़लीलुल्लाह (अलैहिस्सलाम) के मुबारक क़दम जहां पड़े वह पूरी जगह अल्लाह के नूर से जगमगा उठी, चाहे हिजाज़ (सऊदी अरब) हो या शाम (सीरिया) हो या मिस्र।

इस ज़मीन के एक हिस्से पर यहूदी क़ाबिज़ हैं और नील से लेकर फ़रात तक की पूरी ज़मीन को अपने लिए मीरास (विरासत) की ज़मीन क़रार देते हैं।

आइये अल्लाह की किताब की रोशनी में और मौजूदा तौरेत के हवाले से उनके दावे का जाएज़ा लेते हैं। पहले हम मौजूदा तौरेत के हवाले से बात करेंगे फिर कुरआन से दलीलें देंगे।

यहूदी इस पाक ज़मीन को दो बुनियादों पर अपनी मीरास की सरज़मीन कहते हैं; एक हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) से मौरूसी (विरासत) ताल्लुक़ की बुनियाद पर, दूसरे हजरत मूसा (अलैहिस्सलाम) की बशारतों की वजह से जिनका तौरेत में जगह–जगह पर ज़िक्र है।

जहां तक इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) से मौरूसी ताल्लुक़ का मामला है तो मौजूदा यहूदियों का दामन उन शहादतों से ख़ाली है जिनके ज़रिये अपनेआप को यक़ीनी तौर पर इब्राहीम की औलाद और याकूब की औलाद साबित करें। अगर किसी तरह इसे मान भी लिया जाए तो मौजूदा तौरेत यह बताती है कि यह वादा बिना शर्त के नहीं था बल्कि बहुत सी शर्तों को पूरा करने की सूरत में था।

जहां तक मूसा (अलैहिस्सलाम) की ज़बान से मिलने वाली बशारतों का मामला है तो इसमें कोई शक नहीं कि मौजूदा तौरेत में बहुत सी जगहों पर मूसा (अलैहिस्सलाम) की ज़बान से इस पाक सरज़मीन को मीरास की ज़मीन क़रार दिये जाने का ज़िक्र है, एक जगह लिखा है: "देखो! मैंने यह मुल्क तुम्हें दे दिया है, लिहाज़ा इसमें दाख़िल हो जाओ और इस मुल्क में अपना तसल्लुत (वर्चस्व) जमा लो जिसे तुम्हारे बाप–दादा इब्राहीम, इस्हाक़ व याकूब (अलैहिस्सलाम) को और उनके बाद उनकी नस्ल को देने की ख़ुदावन्द ने क़सम खाई है।" (इस्तसना – 1:8)

लेकिन ख़ुद तौरेत से यह वादा बिना शर्त के न था बल्कि इताअत और फ़रमाबरदारी की शर्त पर था, लिहाज़ा जब हज़रत मूसा (अलैहिस्सलाम) ने बनी इस्राईल को ताकीद की कि जिहाद के ज़रिये इस ज़मीन को हासिल कर ले तब पूरी क़ौम ने बहाने बनाए, हज़रत मूसा (अलैहिस्सलाम) के हुक्म हो ठुकरायाय और अल्लाह के फ़रमान का मज़ाक़ उड़ाया। इस पर अल्लाह की तरफ़ से उन पर यूं फिटकार बरसी, तौरेत के अल्फ़ाज़ देखिए: "मुझे अपनी हयात की क़सम! जब तक ख़ुदावन्द के जलाल से सारी ज़मीन मअमूर (आबाद) होती रहेगी, जिस किसी

ने मेरा जलाल देखा और उन मोजज़ों को भी देखा जो मैंने मिस्र में और इस बियाबान में किये लेकिन मेरा हुक्म न माना और दस बार मुझे आज़माया, उनमें से एक शख़्स भी इस मुल्क को हरगिज़ न देख पाएगा जिसको देने का वादा मैंने क़सम खाकर उनके बाप–दादा से किया था।"

तौरेत में बहुत सी जगहों पर खुल्लमखुल्ला इसका ऐलान है कि अल्लाह से किये हुए वादे को अगर तोड़ा जाएगा तो फिर इस ज़मीन पर उनका कोई हक़ नहीं होगा। वह वहां से भगा दिये जाएंगे। जहां तक मूसा (अलैहिस्सलाम) की बशारतों का ताल्लुक़ है तो इसका ज़िक्र कुरआन करीम में भी मौजूद है, हज़रत मूसा (अलैहिस्सलाम) फ़रमाते हैं:

"ऐ मेरी क़ौम! इस मुक़द्दस ज़मीन में दाख़िल हो जाओ जो अल्लाह ने तुम्हारे लिए लिख दी है, उल्टे पांव न आना वरना तुम नाकाम व नामुराद होगे।"

इस आयत में बिलाशुब्हा "कतबल्लाहु लकुम" के अल्फ़ाज़ हैं जिनका मतलब यह है कि यह ज़मीन अल्लाह ने तुम्हारे लिए लिख दी है, लेकिन यह लिखना ईमान व इताअत की शर्त पर था, इसलिए कि आयत के आख़िर में कहा गया है: "पीठ फेरकर वापस न आना वरना तुम नाकाम व नामुराद होगे।" इसी तरह इस रुकूअ के आख़िर में हज़रत मूसा (अलैहिस्सलाम) की बद्दुआ और अल्लाह तआला के फ़ैसले का भी तज़किरा है। क़ौम की नाफ़रमानी, बुज़दिली और निकम्मेपन को देखकर मूसा (अलैहिस्सलाम) ख़ुद अपनी क़ौम को फ़ासिक़ (पापी) क़रार देते हैं और यूं बद्दुआ करते हैं:

"परवरदिगार! मैं तो बस अपनेआप पर और अपने भाई पर अख़्तियार रखता हूं, इसलिए तू मेरे और इस नाफ़रमान क़ौम के बीच जुदाई पैदा फ़रमा।"

इस पर अल्लाह का यह फ़ैसला होता है:

"यह ज़मीन उन पर हराम है।"

"चालीस साल तक यह लोग इसी वादी में मारे–मारे फिरेंगे।"

"तो तुम उन फ़ासिक़ों पर बिल्कुल अफ़सोस न करो।"

इस मुबारक आयत से यह बात बिल्कुल साफ़ हो जाती है कि फ़ासिक़ व फ़ाजिर लोगों के लिए इस पाक ज़मीन के वादे में कोई हिस्सा नहीं है, बल्कि ऐसे लोग इसके बरअक्स (विपरीत) अज़ाब के मुस्तहिक़ हैं। कुरआन करीम के लिहाज़ से यहूदियों को फ़िस्क़ (पाप) उस वक़्त तक ख़त्म नहीं हो सकता जब तक कि वह सच्चे ईमान वाले न बन जाएं और कुरआन करीम की शहादत यह भी है कि यहूदियों में बहुत कम ऐसे होंगे जो ईमान लाएंगे। जब यह बात है तो यहूदियों का एक क़ौम की हैसियत से इस ज़मीन पर कोई हक़ नहीं बनता। न मौजूदा तौरेत के लिहाज़ से न कुरआन करीम की रोशनी में।

कुरआन ने इनके फ़िस्क़ से निकलने के लिए एक ही शर्त बयान की है, वह है हज़रत मुहम्मद (स0अ0व0) पर सच्चा ईमान, इरशाद है:

"अगर अहले किताब ईमान लाएं तो उसी में उनके लिए ख़ैर है, कुछ तो उनमें ईमान वाले हैं (यानि ईमान ला चुके हैं या लाएंगे) मगर अक्सर उनमें नाफ़रमान हैं।"

दूसरी जगह यूं इरशाद है:

"अल्लाह ने उनके कुफ़्र की पादाश (बदले) में उनपर लानत की है, लिहाज़ा वह ईमान नहीं लाएंगे मगर इक्का–दुक्का।"

ख़ुद तौरेत में भी रसूलुल्लाह (स0अ0व0) की बात मानने का यानि आप पर ईमान लाने का उनको हुक्म दिया गया था। आज की बदली हुई तौरेत में मज़बूत इशारों के साथ यह हुक्म मौजूद है फिर भी उनका दीन–ए–इस्लाम में दाख़िल न होना ख़ुद तौरेत के लिहाज़ से उनको इस पाक ज़मीन से महरूम करता है।

यह बात भी ज़हन में रहे कि यहूदी पूरी दुनिया के लिए दावत व पैग़ाम नहीं रखते हैं। उनका मौजूदा दीन ख़ालिस नस्ली है। इसी के नज़रिये से वह पूरी दुनिया की क़ौमों को देखते हैं। दूसरी तरफ़ जिस ज़मीन पर उनका नाजाएज़ क़ब्ज़ा है, अल्लाह ने उसकी बरकतें सारे जहानों के लिए रखी हैं, इस ज़मीन को अल्लाह तआला "वह ज़मीन जिसमें हमने सारे जहानों के लिए बरकतें रखी हैं।" कहता है। इसलिए ख़ालिस अक़्ली तौर पर भी सोचा जाए तो भी वह मुबारक ज़मीन मुसलमानों की क़रार पाती है। इसलिए कि वह ज़मीन आलमी है सारे आलम के लिए है।

मसला-ए-फ़िलिस्तीन

अरब शासकों के लिए चिन्ता का क्षण

मुहम्मद अरमुग़ान बदायूंनी नदवी

फ़िलिस्तीन की ज़मीन ऐतिहासिक, भौगोलिक, राजनीतिक तथा धार्मिक रूप से हमेंशा महत्वपूर्ण रही है। कुरआन की ज़बान में यह वह जगह है जिसके आस–पास को अल्लाह तआला ने बरकत वाला बनाया है। हक़ीक़त में इसके इतिहास से अंदाज़ा होता है कि यह ज़मीन अल्लाह की निशानियों में से एक खुली निशानी है। यही वह ज़मीन है जिसे रहती दुनिया तक क़िब्ला–ए–अव्वल होने सौभाग्य प्राप्त है। यही वह ज़मीन है जहां अल्लाह ने ज़्यादातर नबियों को भेजा और रसूलुल्लाह (स0अ0व0) के इसरा व मेअराज की सफ़र की शुरूआत भी यहीं से हुई। इसके अलावा अगर यहूदियों का इतिहास देखा जाए तो यही वह पाक ज़मीन है जिसका उन्होंने पहले दिन से अपमान किया और इसी ज़मीन पर उन्होंने बहुत से नबियों को क़त्ल किया। फ़िलिस्तीन के इतिहास में अल्लाह तआला ने यहूदियों को निन्यानवे साल का अर्सा शासन करने के लिए दिया, लेकिन उनके एक के बाद एक संगीन जुर्मों की वजह से अल्लाह तआला ने उनसे शासन छीन लिया। उन्हें इस पाक ज़मीन के शासन से महरूम कर दिया और क़यामत तक के लिए उन्हें लानत का तौक़ पहना दिया।

फ़िलिस्तीन की ज़मीन पर इस्राईल आज जो भी ख़ूनी दास्ताने लिख रहा है, यह उसके लिए ज़रा भी हैरत की वजह नहीं है, क्योंकि यही वह ज़हनियत थी जिसने इस ज़मीन में नबियों को सताया और उन्हें क़त्ल किया था और आज भी वही सोच होटों पर समानता का पाठ पढ़ाती हुई, क़ानून व इन्साफ़ की दुहाई देती हुई, मानवता की सभी सीमाओं को आराम से लांघ रही है और मासूमों और निहत्थे फ़िलिस्तीनियों को बेरहमी से क़त्ल कर रही है।

अल्लाह फ़िलिस्तीन के मुसलमानों को हिम्मत व हौसला दे जिन्होंने मस्जिद–ए–अक़्सा को वापस लेने के लिए बेशुमार जानें कुर्बान कर दीं और कर रहे हैं। सच्ची बात यह है कि अब वह हर वक़्त शहादत का जाम पीने के लिए तैयार रहते हैं। उन्हें अपने भविष्य और रोज़ी–रोटी की कोई फ़िक्र नहीं बल्कि उनका पहला और आख़िरी मक़सद बस यह है कि वह इस्राईल जैसी नाजाएज़ औलाद को अपनी पाक ज़मीन से निकाल बाहर करें। इसकी ख़ातिर न जाने कितनी माओं की गोद सूनी हो गयीं और न जाने कितने बच्चे यतीम हो गए। मगर इन तमाम हलाकतों और बर्बादी के बावजूद अल्हम्दुलिल्लाह फ़िलिस्तीनियों के दृढ़ संकल्प में ज़रा भी कमी न आई बल्कि देखा जाए तो इस्राईल और यूरोपीय फ़ौजियों की मिज़ाइलें, अस्लहे और तोपें उनके हौसले के आगे बेहैसियत साबित हो चुके हैं। फ़िलिस्तीन वालों का यह ईमानी जोश ही है जो पूरी दुनिया की ताक़तों के ख़ूनी पंजों के बीच अकेले डटा है और मर्दों की तरह मुक़ाबला कर रहा है बल्कि इस्राईल के डर का आलम तो यह है कि वह बग़ैर किसी सियासी समर्थन के अकेला मैदाने जंग में कूदने की भी हिम्मत नहीं रखता, हालांकि निहत्थे फ़िलिस्तीनियों के पास उसके मुक़ाबले में न तीर व तलवार है न बंदूक़ व तोप!

अल्लाह की ज़ात से यही उम्मीद है कि सच की राह में बहाया गया फ़िलिस्तीन वालों का यह ख़ून रंग लाएगा और तमाम भौतिकवादी साधनों पर ईमान वालों की ताक़त भारी पड़ेगी। मगर अफ़सोस उन लोगों पर है जिन्हें अल्लाह ने यह मौक़ा दिया था कि वह मज़लूमों की मदद कर सकें और ताक़त देने के बाद यह हुक्म दिया था कि वह ज़ालिम का मुक़ाबला करें, लेकिन लानत है ऐसे बुज़दिल, पत्थरदिल और सुलहपसंद नेतृत्व पर जो सिर्फ़ नाच–गानों की महफ़िलों में मगन है और इस्लाम का नाम लेने के बाद भी उसके कान नाचने वालियों की थिरक सुनने की तो ताब रखते हैं मगर बेबस फ़िलिस्तीनियों की आह पर ज़रा भी उनकी ग़ैरत नहीं जागती। (फ़इल्लाहिल मुश्तका)

इस्राईल नामंज़ूर क्यों?

मुहम्मद नफ़ीस ख़ाँ नदवी

इस वक़्त इस्लामी दुनिया अपनी सरज़मीन में जिन सियासी मसलों का सामना कर रही है, उनमें सबसे ऊपर "फ़िलिस्तीनी ज़मीन" का मसला है जो नबियों व औलिया के रहने व इबादत करने की जगह होने की वजह से बहुत ही बरकत वाली समझी जाती है, जिसके बारे में कहा जाता है:

"Too small geography but too big a history"

यानि भौगोलिक रूप से तो बहुत छोटी लेकिन ऐतिहासिक रूप से बहुत बड़ी।

फ़िलिस्तीन, भूमध्य सागर के पूरब में स्थित है जहां मुसलमानों का क़ाबिल–ए–अक़ीदत (आस्था) व एहतेराम बैतुल मुक़द्दस स्थित है, जो पूर्व में सल्तनत–ए–उस्मानिया का हिस्सा था मगर पहले विश्वयुद्ध के बाद से यहां के ज़्यादातर इलाक़ों पर यहूदियों का क़ब्ज़ा है। फ़िलिस्तीन में यहूदियों को आबाद करने में ब्रिटेन का अहम रोल रहा है। ब्रिटिश सरकार ने यहूदियों की खुफ़िया संस्था "ज्यूश एजेंसी" को खुली छूट दी थी कि दूसरे देशों से यहूदियों को लाकर यहां बसाएं और जब नाज़ी जर्मनी और पूर्वी यूरोप में यहूदियों को उनकी करतूत की सज़ा मिलने लगी तो फ़िलिस्तीन ही उनकी पनाहगाह बना, जो धीरे–धीरे एक देश की शक्ल लेता गया।

नवम्बर 1947ई0 में सयुंक्त राष्ट्र संघ की एक क़रारदाद के द्वारा फ़िलिस्तीन का 55 प्रतिशत भाग यहूदियों को दिया गया। फिर 14 मई 1948 को इंग्लैन्ड और अमरीका की सांठगांठ से तिलअबीब नामक स्थान पर "यहूदियों के प्राकृतिक और ऐतिहासिक अधिकार" के तौर पर "इस्राईल" की स्थापना की घोषणा कर दी गयी और इसके बाद सैन्य अभियान के द्वारा इस्राईल की सीमाएं 78 प्रतिशत तक बढ़ती चली गयीं। 1967ई0 में सयुंक्त राष्ट्र संघ ने दो क़रारदादों के द्वारा इस्राईल को पुरानी सीमाओं में जाने का आदेश दिया किन्तु उस पर कोई कार्यवाही न हुई, बल्कि निहत्थे फ़िलिस्तीन को हर प्रकार से परेशान करने का सिलसिला चल पड़ा। उनके क्षेत्रों में जगह–जगह चौकियां स्थापित की जाती हैं। रास्ते बन्द कर दिये जाते हैं। कर्फ़्यू लगाकर घर–घर की तलाशी ली जाती है। औरतों की इज़्ज़ते लूटीं जाती हैं। बच्चों को गिरफ़्तार कर लिया जाता है। उन्हें बेघर करके कैम्पों में रहने पर मजबूर कर दिया जाता है और फिर उन कैम्पों को भी क़ब्रिस्तान में बदल दिया जाता है, जिसकी एक मिसाल "जिनीन" नामी कैम्प है।

यहूदियों ने चूंकि फ़िलिस्तीन पर जबरन क़ब्ज़ा किया था। और वहां के लोगों को मजबूर किया था कि वो इस्राईल के अस्तित्व को स्वीकार करें, इसके परिणामस्वरूपयुद्ध अनिवार्य था और इसी का नतीजा है कि आज तक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी मुसलमानों ने इस्राईल को एक देश के रूप में स्वीकार नहीं किया।

इस्राईल के वजूद को मनवाने के लिए पिछले सात दशकों से यही दावा किया जा रहा है कि फ़िलिस्तीन यहूदियों का आबाई वतन (पूर्वजों का देश) है। 1948ई0 से अब इस्राईल के संगीन ज़ुल्मों के पीछे यही परिदृश्य रहा है कि अरबों ने यहूदियों को उनकी मातृभूमि से बेदख़ल कर दिया था, लेकिन यहूदियों के नज़दीक मातृभूमि का यह दृश्टिकोण इस बात की बिल्कुल दलील नहीं कि अरबों का इस ऐतिहासिक ज़मीन से कोई संबंध नहीं है, क्योंकि यह सवाल अपनी जगह पर क़ायम है कि जब बनी इस्राईल का वजूद ही नहीं था तब यहां कौन सी क़ौम आबाद थी? पुरातत्व विभाग के स्वीकारों तथा ऐतिहासिक दस्तावेज़ की रोशनी में फ़िलिस्तीन को किनआनियों और यबूसियों ने आबाद किया था जोकि ख़ालिस अरब थे।

1450 ईसा पूर्व में हज़रत यूशा बिन नून (अलैहिस्सलाम) के नेतृत्व में यहूदी फ़िलिस्तीन की ज़मीन में दाख़िल हुए थे और फिर लगभग चार सौ साल तक वहां आबाद मुख़्तलिफ़ नस्ली गिरोहों से लड़ने और उन्हें हराने में लगे रहे। जिन क़ौमों को परास्त करके उन्होंने अपनी हुकूमत क़ायम की थी वह अरब ही थे।

फ़िलिस्तीन का इलाक़ा यूनान और फिर रोम की साम्राज्य में शामिल एक शांतिप्रिय इलाक़ा था, लेकिन जब यहूदी यहां आबाद हुए तो उन्होंने हुकूमत के ख़िलाफ़ साज़िशें और बग़ावतें शुरू कर दीं जिसके नतीजे में कई बार यह धरती तहस–नहस हुई और यहां का अमन व सुकून चला गया। आख़िरकार यहूदी अपने अन्त को पहुंचे, क़त्ल किए गए, गुलाम बनाए गए और फ़िलिस्तीन की सरज़मीन से बाहर निकाल दिए गए लेकिन दुनिया में कहीं भी क़ाबिले कुबूल न होने की वजह से हर बार चोरी–चुपके यहीं आकर बस जाते और अपना समुदाय स्थापित कर लेते। अन्ततः 66ई0 में यहूदियों ने रोमन

आख़िरकार 66 ईसवी में यहूदियों ने रोमन साम्राज्य के ख़िलाफ़ बग़ावत की जिसको कुचलने के लिये रोमन जनरल टाइटस ने हमला किया, यहूदियों का क़त्लेआम किया और ज़िन्दा बच जाने वालों का फ़िलिस्तीन में प्रवेश निषेध कर दिया गया। इसके बाद यहूदी पूरी दुनिया में फैल गये। जहां ताक़त मिली वहां ज़ुल्म किया और जहां कमज़ोर पड़े वहां षडयंत्र रचा।

इस पूरे इतिहास की रोशनी में फ़िलिस्तीन एक ख़ासिल अरबी शहर है जिसको दूसरी जातियों के हमलों का सामना करना पड़ा है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि उसकी मिल्कियत का अधिकार हमलावरों को दे दिया जाये। यदि उन तमाम सालों को एकत्र किया जाये जो यहूदियों ने हमले करते और तबाही मचाते में फ़िलिस्तीन में बिताये तो इतनी मुद्दत भी नहीं बनेगी जितनी अंग्रेज़ों ने भारत में या हालैन्डियों ने इन्डोनेशिया में गुज़ारी और यदि लाचारी की हालत में एक लम्बा अर्सा किसी इलाक़े में गुज़ारने से उस धरती पर मिल्कियत का अधिकार बनता है तो यहूदियों को चाहिये कि वह फ़िलिस्तीन के बजाय जहां उन्होंने केवल 200 साल गुज़ारे मिस्र की मिल्कियत की मांग करें, जहां उन्होंने 430 साल गुज़ारे तथा इसी तरह मुसलमानों को चाहिये कि वे स्पेन की धरती की मांग करें जहां उन्होंने 780 सालों तक शासन किया।

है ख़ाक़–ए–फ़िलिस्तीन पर यहूदियों का अगर हक़।
हस्पानिया पे क्यों नहीं हक़ अहले अरब का।।

इस्राईल को स्वीकार न करने का एक मूल कारण यह भी है कि इस्राईल दुनिया का एकमात्र ऐसा देश है, जिसकी सीमाएं आज तक तय नहीं हो सकीं। बहुत से अरब देश और फ़िलिस्तीनी जनता इस्राईल को सिरे से स्वीकार ही नहीं करती। संयुक्त राष्ट्र ने फ़िलिस्तीन और इस्राईल के बीच जो सरहदें खींची हैं, इस्राईल उन सरहदों को कुबूल नहीं करता। सयुंक्त राष्ट्र द्वारा तय की गयी सरहदें कुछ और हैं और इस्राईल के क़ब्ज़े वाले इलाक़े की सरहदें कुछ और। किसी नियम व क़ानून की परवाह किये बिना इस्राईली सेनाएं जिस तरह पूरे फ़िलिस्तीन में दनदनाती फिरती हैं उससे इस्राईली सरहदों का नक़्शा कुछ और ही दिखाई देता है। इसके अलावा इस्राईल और सहयूनी (ज़ियोनिस्ट) शासकों के इरादों पर आधारित "ग्रेटर इस्राईल" सबसे अलग है। इस नक़्शे में निम्नलिखित इलाक़े शामिल हैं: फ़िलिस्तीन, लेबनान, पश्चिमी सीरिया, दक्षिणी तुर्की। जार्डन, सीना, उत्तरी तुर्की। इराक़ तथा सऊदी अरब के कुछ क्षेत्र।

ग्रेटर इस्राईल की स्थापना के लिये जो मन्सूबा तैयार किया गया उसे आम बोलचाल की भाषा में "येनोन प्लान" कहा जाता है। इस मंसूबे के तहत ख़ासकर मध्यपूर्व को छोटे–छोटे राज्यों में बदलना है ताकि कोई मज़बूत ताक़त इस्राईल की विरोधी न हो सके। इस मक़सद को पाने के लिये इस्राईल के पड़ोसी देशों को नस्ली, जातीय, धार्मिक आधार पर गृहयुद्ध की आग में धकेल दिया गया। इसी कारण इराक़ के अन्दर कुर्द इलाक़े का बनना और फिर शिया–सुन्नी के आधार पर इराक़ का बटवारा, सीरिया का गृहयुद्ध इत्यादि सब इस्राईल के प्रसारवादी नीति का हिस्सा हैं और उन सारी तबाहियों की संगीनी को तस्लीम करने के बाद मज़ीद सख़्त हो जायेगी।

इस्राईल को तस्लीम करने से पहले फ़िलिस्तीन के हक़ीक़ी वारिस जिन्होंने इस्लाम कुबूल कर लिया है नीज़ दुनिया भर के सारे मुसलमानों को ख़ासकर "बैतुल मक़दस" के सिलसिले में अपने मौक़िफ़ की नज़रे सानी भी करनी होगी। इसकी दो ही शक्लें हैं या तो इस्राईल को बैतुल मक़दस से दस्तबरदारी पर आमादा करा लिया जाये जो कि नामुमकिन है। या ख़ुद यूटर्न लेकर बैतुलमक़दस को इस्राईलियों के सुपुर्द कर दिया जाये और यह तस्लीम कर लिया जाये कि अब तक कि सारी कुर्बानियां और इन्सानी जान व माल की सारी कुर्बानियां नाजायज़ और बेमक़सद थीं, यह फ़ैसला करना नामनिहाद हुक्मरानों के लिये तो शायद आसान हो लेकिन उम्मते मुस्लिमा के लिये नामुमकिन है।

ऐतिहासिक दलीलों और मानवीय क़ानून की रोशनी में इस्राईल को तस्लीम करने का कोई जवाज़ नहीं। इस बात को आलमी ताक़ते भी तस्लीम करती हैं। यही कारण है कि अलकुद्स का इस्राईली राजधानी स्वीकार करने की अमरीकी तजवीज़ को पूरी तरह से नकार दिया गया और अमरीका की धमकियां भी कोई असर न दिखा सकी।

इस्राईली जारिहत और अमरीकी दबाव के सामने मुसलमानों को किसी समझौते के बजाय अमली एकदार की ज़रूरत है, लेकिन शर्त यह है कि इक़दाम ठोस और हिकमते अमली से पुर हों, और जोश के बजाय होश से तैयार किये गये मंसूबे के तहत हो क्योंकि फ़िलिस्तीन का मसला अब महज़ फ़िलिस्तीनियों या अरबों का नहीं रहा बल्कि यह पूरी उम्मते मुस्लिमा का मसला है।

फ़िलिस्तीनी ज़मीन का हक़दार कौन?

"बहुत से लोगों के दिमाग़ में यह ग़लतफ़हमी रहती है कि अगर यहूदी एक रा ट्र बनाना चाहते हैं और उस ज़मीन में क़ायम करना चाहते हैं जहां उनका इतिहास है यानि फ़िलिस्तीन की ज़मीन, जो नबियों की ज़मीन है और ज़्यादातर नबी बनीइस्राईल से ही आए हैं और यहूदी बनी इस्राईल ही की औलाद हैं। अगर यह वहां पर अपनी हुकूमत क़ायम करना चाहते हैं तो इसमें क्या रुकावट है और क्यों उसकी मुख़ालिफ़त (विरोध) की जाती है? तो याद रहे कि यह वह प्रोपगन्डा है जो इस्राईल की तरफ़ से पूरी दुनिया में फैलाया गया है कि हम इस ज़मीन के वारिस हैं लिहाज़ा हम इस बात के ज़्यादा हक़दार हैं कि हम यहां पर हुकूमत क़ायम करें।

हक़ीक़त यह है कि हज़ारों साल के इतिहास में फ़िलिस्तीन की ज़मीन पर बनी इस्राईल की हुकूमत सिर्फ़ ९९ साल क़ायम रही है और फ़िलिस्तीन के अस्ल नागरिक "किनआनी" हैं। किनआन वह क़ौम है जो जज़ीरा–ए–अरब (अरब द्वीप) के मुन्तक़िल (हस्तान्तरित) होकर फ़िलिस्तीन में आकर आबाद हुई थी, लिहाज़ा फ़िलिस्तीन की शुरूआत अरबों से ही होती है, जो वहां से आकर फ़िलिस्तीन में आबाद हुए थे और उन्होंने इस पर सदियों हुकूमत की। इसके बाद हज़रत सुमोईल (अलैहिस्सलाम) के नेतृत्व में फ़िलिस्तीन को फ़तेह किया गया और उस वक़्त से लेकर ९९ साल तक बनी इस्राईल ने हुकूमत की, जबकि वह हुकूमत टूटती–फूटती रही और उसके अन्दर अलग–अलग दरारें पड़ती रहीं, जिसमें ख़ुद उनकी बदआमालियां भी थीं। इस अर्से में उन्होंने इस सरज़मीन में नबियों को क़त्ल किया, जो कुरआन करीम में स्प ट रूप से है और अब भी उनका इतिहास "अहद नामा क़दीम" में मौजूद है कि उन्होंने इस ९९ साल के इतिहास में हज़ारों अम्बिया किराम का क़त्ल किया है। फिर इसके बाद यहूदियों की फ़िलिस्तीन के ऊपर जो आख़िरी हुकूमत ख़त्म हुई है उसको १८०० साल बीत चुके हैं और इस एक हज़ार आठ सौ साल के बीच यहूदी हुकूमत एक लम्हे के लिए भी वहां दोबारा क़ायम नहीं हुई।

सोचने वाली बात है कि अगर अट्ठारह सौ साल बाद कोई आदमी यह कहे कि मेरे पूर्वज ९९ साल वहां रहे थे लिहाज़ा मैं हक़दार हूं कि यहां पर हुकूमत करूं और इस वक़्त के नागरिकों को निकाल बाहर करूं? यह बात अगर एक बार मान ली जाए तो सोंचे कि मौजूदा दुनिया का क्या होगा? तो फिर रेड इण्डियन्स कहेंगे अमरीका के ऊपर सदियों हमारी हुकूमत रही है और दूसरों को तो बहुत ज़्यादा अर्सा भी नहीं गुज़रा है, अब हमारा हक़ है कि अमरीका के लोगों को अमरीका से निकालकर अपनी हुकूमत क़ायम करें और फिर यह एक देश के ऊपर आधारित नहीं बल्कि सारी दुनिया के देश अगर यह बात मान लें तो मौजूदा दुनिया ख़त्म ही हो जाएगी।

सोचने की बात है कि दुनिया के अन्दर कोई अक़्लमंद इन्सान यहूदियों का यह फ़लसफ़ा कुबूल कर सकता है? लेकिन यह फ़लसफ़ा सिर्फ़ इस्राईल के हक़ में कुबूल किया गया, जबकि बनी इस्राईल या यहूदी दुनिया के अलग–अलग देशों में फैले हुए थे, कोई इंग्लैण्ड में, कोई फ्रांस में, कोई स्विट्ज़रलैंड में, कोई रूस में और अब वह कहते हैं कि यह सब इकट्ठे यहां बसाए जाएंगे, इसके लिए अगर यहां के लोगों को क़त्ल–ए–आम करना पड़ा तो क़त्ल–ए–आम भी किया जाएगा। इसीलिए १९४८ई० के अन्दर इस्राईली रा ट्र की स्थापना की नियमानुसार घो णा की गई जिसमें सबसे ज़्यादा हिस्सा ब्रिटेन और उसके साथ अमरीका का था, जिसने मिलकर इस नाजाएज़ बच्चे की परवरिश शुरू की।"

मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद तक़ी उस्मानी साहब

R.N.I. No.
UPHIN/2009/30527

Monthly
ARAFAT KIRAN
Raebareli

Issue: 11 | November 2023 | Volume: 15

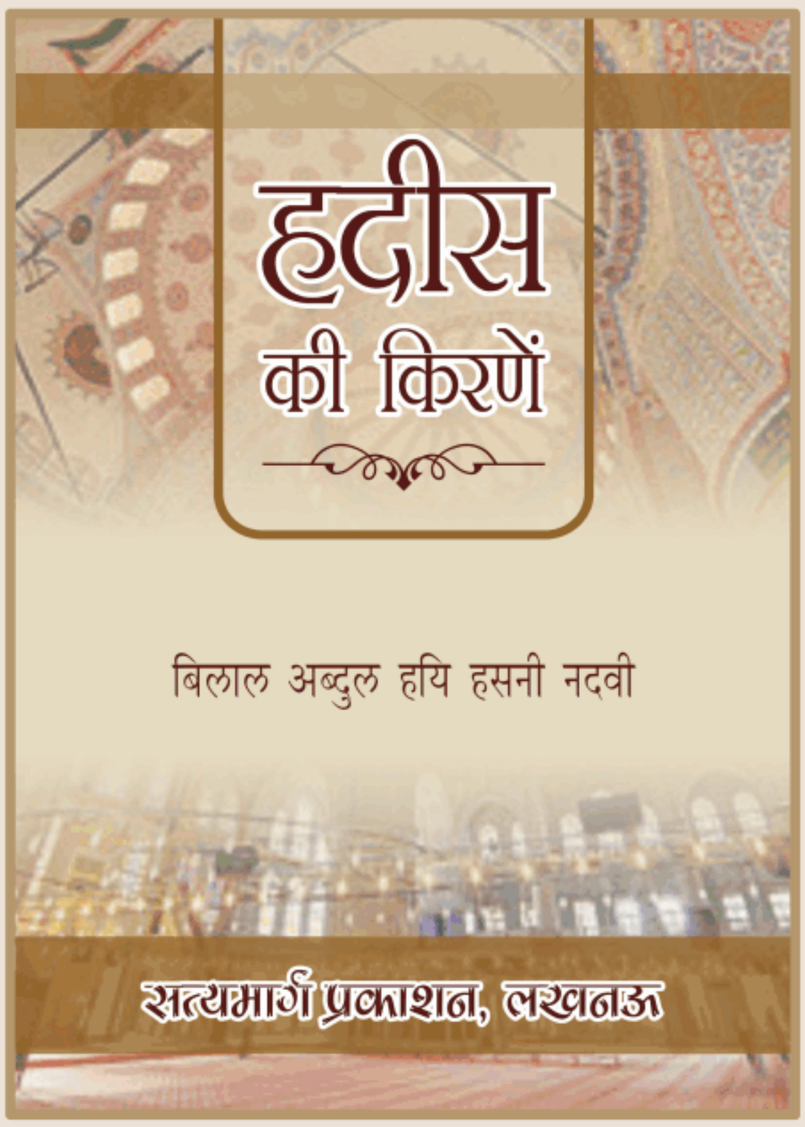

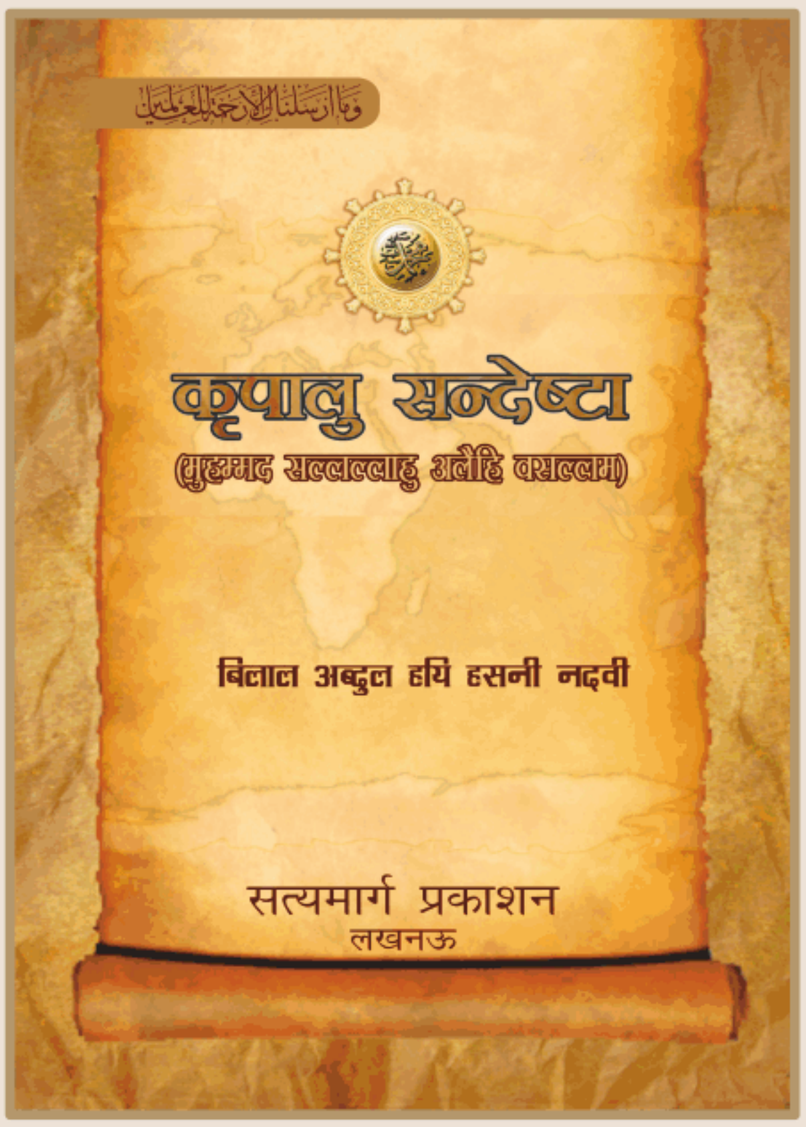

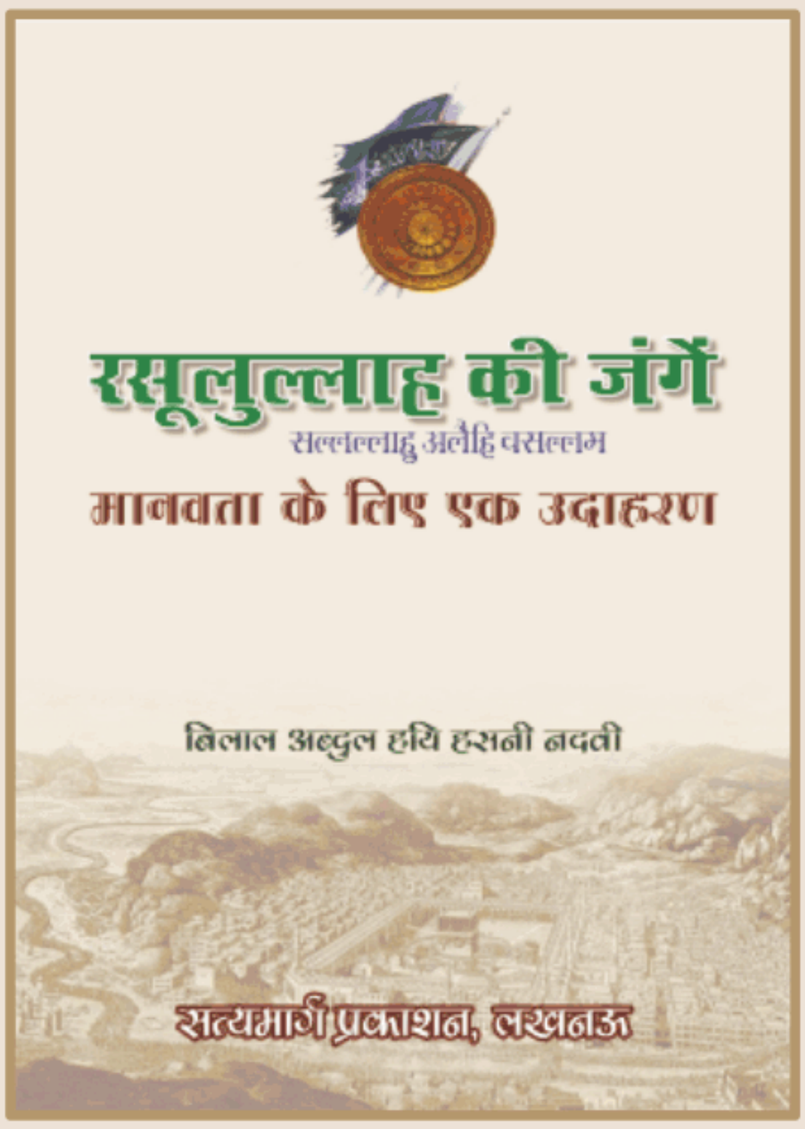

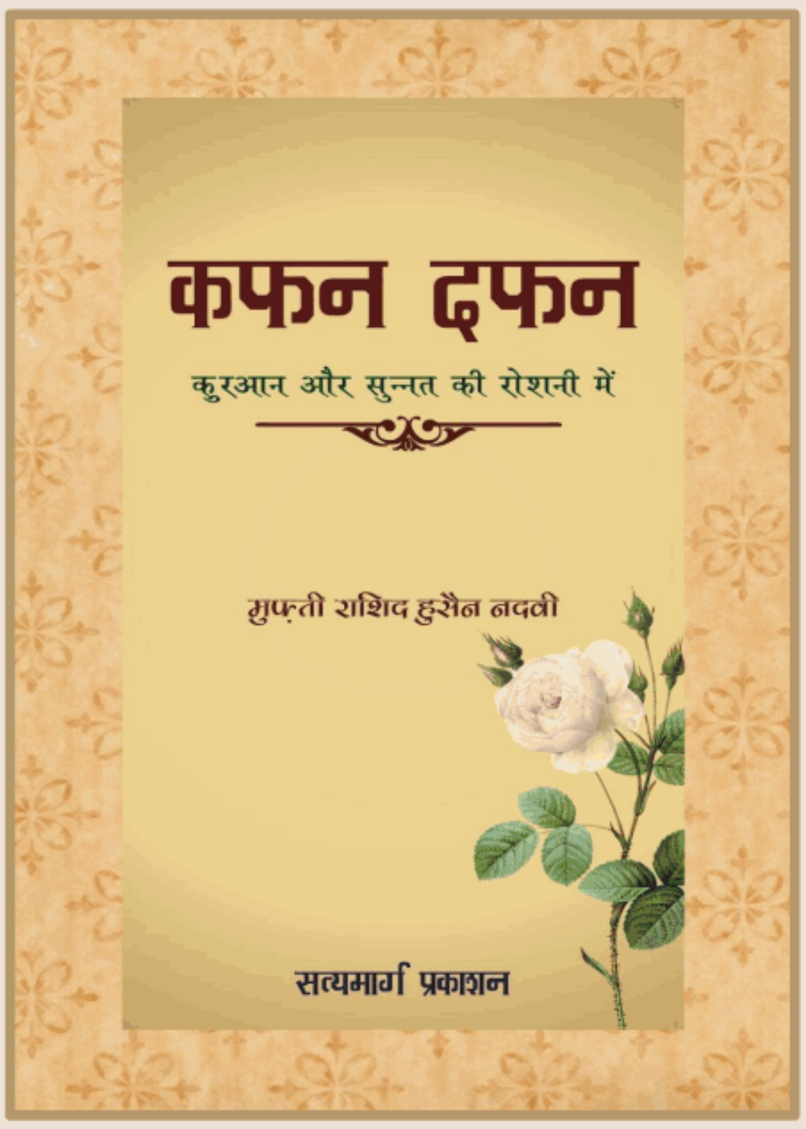

Editor: Bilal Abdul Hai Hasani Nadwi
MARKAZUL IMAM ABIL HASAN AL-NADWI
Dare Arafat, Takiya Kalan, Raebareli, U.P.
Mobile:9565271812
E-Mail: markazulimam@gmail.com
www.abulhasanalinadwi.org

Printed & Published by: Mohammad Hasan Nadwi
On Behalf of: Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi
Printed at S.A. Offset Printers, Masjid ke peeche,Phatak
Abdullah Khan, Sabzi Mandi, Station Road, Raebareli, U.P.